

योग साधना में गुरु का स्थान

प्रथम संस्करण २०१६

© श्रीअरविन्द एवं श्रीमाँ के समस्त लेखन तथा छायाचित्रों के प्रकाशनाधिकार श्रीअरविन्द आश्रम पुदुच्चेरी द्वारा सुरक्षित ।

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, राजस्थान राज्य समिति, जयपुर ।

मुद्रक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पुदुच्चेरी

मूल्य : ५० रु.

Yog-sadhana main guru ka sthan (Hindi)

A compilation from the writings of the Mother and Sri Aurobindo

Published by : Sri Aurobindo Society, Rajasthan State Committee, Jaipur

Printed at : Sri Aurobindo Ashram Press, Puducherry
Printed in India

Website : www.aurosociety.org

E-mail : sasrajasthan@aurosociety.org

विषय-सूची

१. गुरु में श्रद्धा	श्रीअरविन्द	...	५
२. गुरु के प्रति ग्रहणशीलता	श्रीअरविन्द	...	६
३. चार साधन	श्रीअरविन्द	...	७
४. शब्द	श्रीअरविन्द	...	७
५. पूर्ण योग में गुरु	श्रीअरविन्द	...	८
६. गुरु की आवश्यकता	श्रीअरविन्द	...	९
७. गुरु के प्रति समर्पण	श्रीअरविन्द	...	१२
८. अतिमानसिक योग में गुरु का स्थान	श्रीअरविन्द	...	१२
९. एक गुरु के प्रति निष्ठा	श्रीअरविन्द	...	१३
१०. गुरु की क्षमता	श्रीअरविन्द	...	१४
११. कठिनाई में गुरु की सहायता	श्रीअरविन्द	...	१७
१२. यदि तुम सचमुच...	श्रीअरविन्द	...	२०
१३. योग बिना गुरु	श्रीअरविन्द	...	२१
१४. गीता के भागवत गुरु...	श्रीअरविन्द	...	२१
१५. श्रीमाँ द्वारा पूर्ण स्वीकृति	श्रीअरविन्द	...	२२
१६. गुरु, भगवान तथा अवतार	श्रीअरविन्द	...	२३
१७. योग में गोपनीयता अनिवार्य	श्रीअरविन्द	...	२५
१८. गुरु के प्रति निर्विवाद श्रद्धा	श्रीअरविन्द	...	२५
१९. अद्वैत तथा सांख्य विधि	श्रीअरविन्द	...	२६
२०. गुरु — द अलकेमिस्ट	दिलीप कुमार राय	...	२८
२१. गुरु-गृहवास	ए.वी. पुराणी	...	३७
२२. मंत्र और गुरु	श्रीमाँ	...	४०
२३. गुह्य विद्या और गुरु	श्रीमाँ	...	४१
२४. आध्यात्मिक ज्ञान	श्रीअरविन्द	...	४४
२५. पूर्णयोग का स्वरूप	श्रीअरविन्द	...	४५
२६. श्रीमाँ की उपस्थिति से आध्यात्मिक...	श्रीअरविन्द	...	४९
२७. मातृवाणी	श्रीमाँ	...	५०
२८. गुरु के प्रति एकनिष्ठ श्रद्धा	श्रीमाँ	...	५२

२९. एक गुरुदीक्षा कथा	श्रीमाँ	...	५३
३०. प्रेम केवल तेरे लिए	श्रीमाँ	...	५९
३१. केवल भगवान या गुरु पर भरोसा	श्रीमाँ	...	६१
३२. जो अनन्त को चुनते हैं	श्रीमाँ	...	६२
३३. दूसरों की नजर में...	श्रीमाँ	...	६६
३४. गुरु के पास गुरु से दूर	श्रीमाँ	...	६८
३५. मिथ्यात्व पर विजय	श्रीमाँ	...	६८
३६. पूर्ण मुक्ति तथा स्वेच्छाचार	श्रीमाँ	...	७०
३७. मानसिक प्रतिपादन से...	श्रीमाँ	...	७२

योग साधना में गुरु (मार्ग दर्शक) का महत्त्व

गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः

— विश्वसार तंत्र

गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु शिव हैं ।
गुरु परम ब्रह्म हैं । उस गुरु को नमस्कार है ।

— विश्वसार तंत्र

इस योगानुशासन में गुरु की प्रेरणा और कठिन चरणों में उसका नियन्त्रण तथा उसकी उपस्थिति अपरिहार्य हैं क्योंकि अन्यथा बिना काफी ठोकर खाये और भूल किये मार्ग पर चलना असम्भव हो जायेगा जो सफलता के सभी अवसरों को अवरुद्ध कर देगा ।

गुरु वह है जो उच्चतर चेतना और सत्ता में उठ चुका है और प्रायः इसकी अभिव्यक्ति अथवा प्रतिनिधि माना जाता है । वह न केवल अपनी शिक्षा द्वारा तथा इससे भी अधिक अपने प्रभाव तथा उदाहरण के द्वारा बल्कि अपनी अनुभूति को दूसरों में संचारित करने की शक्ति के द्वारा भी मदद करता है ।

SABCL Vol.26, p. 95-97

— श्री अरविन्द

पूर्ण योग में गुरु

क्योंकि पूर्ण योग का सर्वोच्च शास्त्र प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में छिपा सनातन वेद है, इसलिए इसका सर्वोच्च मार्गदर्शक तथा गुरु आन्तरिक मार्गदर्शक है, जो हमारे अन्दर प्रच्छन्न विश्व शिक्षक अथवा जगत-गुरु है । वही अपने ज्ञान के देदीप्यमान प्रकाश से हमारे अन्धकार को नष्ट करता है; वह प्रकाश हमारे अन्दर उसके अपने आत्मोद्घाटन की वर्द्धनशील महिमा बन जाता है । वह हमारे अन्दर क्रमशः मुक्ति, परमानन्द, प्रेम, शक्ति, अमर्त्य सत्ता की अपनी ही प्रकृति को अनावृत करता है । वह हम सबके समक्ष हमारे आदर्श के रूप में अपना दिव्य दृष्टान्त उपस्थित करता है और निम्न सत्ता को उसके एक प्रतिबिम्ब में रूपान्तरित करता है जिसका यह चिन्तन-मनन करता है । हमारे अन्दर अपने प्रभाव तथा अपनी उपस्थिति को भर कर वह वैयष्टिक सत्ता को वैश्व तथा लोकातीत सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सक्षम बनाता है ।

CWSA Vol.23, p. 61

— श्री अरविन्द

गुरु में श्रद्धा

शिष्य के लिए अपने गुरु या आध्यात्मिक मार्गदर्शक से लाभ उठाने के लिए तीन शर्तें हैं :

प्रथम : शिष्य को उसे पूर्ण रूप से और केवल उसे ही किसी अन्य विरोधी अथवा दूसरे प्रभाव के प्रति समर्पित हुए बिना स्वीकार करना होगा ।

द्वितीय : उसे गुरु द्वारा दिये संकेतों को स्वीकार करना तथा अपनी आध्यात्मिक क्षमता के अनुसार यथाशक्ति पूर्ण श्रद्धा तथा अध्यवसाय के साथ दृढ़तापूर्वक पालन करना होगा ।

तृतीय : शिष्य के मन को गुरु जितनी शिक्षा देता है उससे अधिक अपने आपको उसे गुरु के प्रति उद्घाटित तथा ग्रहणशील बनाना होगा यानी आध्यात्मिक दृष्टि से उसका गुरु जैसा है — उसके अन्दर की आध्यात्मिक चेतना, ज्ञान, ज्योति, शक्ति, दिव्यता जो शिष्य द्वारा अपने भीतर इसके ग्रहण करने पर अपनी ही भागवत संभावना में अपनी चेतना तथा प्रकृति की वृद्धि के लिए अपने अन्दर इसके उपयोग किये जाने पर उसके विकास में मदद करती है ।

CWSA Vol.29, p.190

— श्रीअरविन्द

बहुत कम को करती मार्गदर्शन जो मेरे सामने से जाते हैं ज्योति की ओर,
बहुत कम की करती रक्षा, अधिकांश छूट जाते हैं, अरक्षित;
बहुत कम की करती मदद मैं, अधिकतर करते प्रयास और हो जाते विफल
किन्तु मैंने कर लिया अपना हृदय कठोर और करती निज कर्म
शनै-शनै होती है ज्योति वर्धित महत्तर पूरब में
शनै-शनै विश्व बढ़ता है आगे भागवत पथ पर ।

सावित्री, पृ.५१०

गुरु के प्रति ग्रहणशीलता

साधक के लिए गुरु क्या कर सकता है — यह साधक की ग्रहणशीलता पर निर्भर करता है — साधना की किसी विधि अथवा नियम पर नहीं । चेतना की कुछ मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं अथवा मनोवृत्तियों में ग्रहणशीलता को बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है — जैसे गुरु के प्रति विनम्रता, भक्ति, आज्ञाकारिता, विश्वास, उसके प्रभाव के प्रति कुछ मात्रा में ग्रहणशील निष्क्रियता । इसके विपरीत, स्वच्छन्दता, आलोचनात्मक मनोवृत्ति, सन्देहात्मक प्रश्न आदि दूसरी दिशा में, गुरु को अप्रत्यक्ष रूप से अथवा परदे के पीछे से मदद करने के लिए बाध्य करते हैं । किन्तु मुख्य चीज है चेतना में एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक उद्घाटन जो ग्रहण करने के संकल्प तथा सही मनोवृत्ति की सहायता से आता है अथवा उसमें स्वतः वृद्धि होती है । यदि ऐसा हो तब गुरु से कुछ खींचने की आवश्यकता नहीं पड़ती, केवल चुपचाप ग्रहण करना होता है ।

CWSA Vol.29, p. 191

— श्री अरविन्द

करती मार्गदर्शन मैं मनुज का, भागवत पथ की ओर
औ' करती हूँ रक्षा उसकी लाल भेड़िये और सर्प से,
उसके मर्त्य हस्त में रख देती हूँ स्वर्ग का कृपाण
औ' उसके मस्तक पर देवों का कवच ।
करती हूँ भंजन अज्ञानपूर्ण दंभ का मानव मन के
औ' करती हूँ निर्देशन विचार का, सत्य की विशालता की ओर;
कर देती हूँ भंग मनुज के संकीर्ण सफल जीवन को
औ' करती हूँ बाध्य उसके शोकार्त नेत्रों को सूर्य पर एक टक दृष्टि लगाने हेतु
जिससे वह पार्थिव जीवन से मृत हो, जी सके निज आत्मा में
जानती हूँ मैं लक्ष्य, जानती हूँ रहस्यमय पथ
किया है अध्ययन मैंने मानचित्रों का अदृश्य जगत्तों के
मैं हूँ युद्ध की नेत्री, यात्रा का मार्गदर्शक तारा ।

सावित्री, पृ. ५१०

चार साधन

योगाभ्यास द्वारा जो पूर्णता अथवा योग सिद्धि आती है उसे सर्वोत्तम रीति से चार महत साधनों की संयुक्त कार्यान्विति द्वारा उपलब्ध की जा सकती है । प्रथम है **शास्त्र** — सत्य का ज्ञान, उसके सिद्धान्त, उसकी शक्तियाँ, प्रक्रियाएं जो सिद्धि को नियन्त्रित करती हैं । दूसरा है ज्ञान द्वारा निर्धारित निर्देशों के अनुसार धीरता और दृढ़ता के साथ सक्रिय बने रहना — **उत्साह** । तीसरा है **गुरु** जो हमारे ज्ञान और प्रयास को अपने प्रत्यक्ष सुझाव, उदाहरण तथा प्रभाव के द्वारा आध्यात्मिक अनुभूति की ऊँचाई तक उठाता है । अन्तिम है समय की उपकरणीयता — **काल**, क्योंकि सभी वस्तुओं में उनकी क्रियाशीलता का एक चक्र तथा भागवत गति की एक अवधि होती है ।

CWSA Vol.23, p. 53

— श्रीअरविन्द

शब्द

सामान्यतः आत्म-रहस्योद्घाटन के कार्य में एक साधन के रूप में और भगवान के प्रतिनिधि के रूप में एक बाह्य शब्द की आवश्यकता होती है । यह या तो अतीत से लिया गया एक शब्द हो सकता है अथवा जीवित गुरु का अधिक शक्तिशाली शब्द हो सकता है । कुछ उदाहरणों में यह प्रतिनिधि-शब्द आन्तरिक शक्ति की जागृति तथा अभिव्यक्ति के लिए केवल बहाना के रूप में लिया जाता है । मानों यह सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ भगवान की, प्रकृति को शासित करने वाले विधान की सामान्यता को, एक रियायत हो । देवकी पुत्र कृष्ण की उपनिषदों में यह कहा गया है कि उन्होंने ऋषि घोरा से एक शब्द ग्रहण किया था और उन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया था । इसी प्रकार रामकृष्ण ने अपने आन्तरिक प्रयास से ज्ञान प्राप्त करने के बाद योग के भिन्न-भिन्न मार्गों में अनेक गुरुओं को स्वीकार किया किन्तु हमेशा अपनी सिद्धि की शैली तथा द्रुतता से यह प्रदर्शित किया कि उनकी स्वीकृति सामान्य विधान के प्रति छूट थी जिसके द्वारा प्रभावशाली ज्ञान को गुरु से शिष्य द्वारा ग्रहण किया जाना चाहिये ।

CWSA Vol.23, p. 54

--- श्रीअरविन्द

गुरु प्रदत्त ज्ञान

... योग के अनुसार जैसा कि भारत में ज्ञात है, गुरु की मध्यस्थता करीब-करीब अनिवार्य है। यह बैसाखी नहीं है। यह भगवान की प्रत्यक्ष क्रिया है जो गुरु के द्वारा सिद्ध की गई है। यह चेतना का आध्यात्मिक अनुभूति के प्रति उद्घाटन है जिसके बिना बहुत कम लोग खुल सकते हैं अथवा ज्यादा दूर जा सकते हैं। यदि वे अपने आप आगे बढ़ते हैं तब वे सब तरह के खतरों में और भूलों में भटक सकते हैं और उन्हें यह ज्ञान नहीं होता कि इनसे कैसे बचें।

सभी अनुभूतियाँ प्रत्यक्ष, डायरेक्ट होती हैं — ऐसी कोई चीज नहीं होती जिसे अप्रत्यक्ष या इनडायरेक्ट आध्यात्मिक अनुभूति कहें। किन्तु जब चेतना पर्याप्त रूप से उद्घाटित हो जाती और परिपक्व हो जाती है, एक ज्ञान और मार्गदर्शन अन्दर से तथा ऊपर से आ सकता है और साधना आन्तरिक भागवत कार्यप्रणाली के द्वारा आगे बढ़ती है। किन्तु साधक को बहुत सावधान रहने की जरूरत है क्योंकि वह आसानी से अपने मन, अहं, या प्राण या किसी निम्न शक्ति के मार्गदर्शन को भागवत मार्गदर्शन समझने की भूल कर सकता है। आन्तरिक अनुभूति तथा चेतना के द्वारा ही व्यक्ति आध्यात्मिक परिणाम को जानता है — व्यक्ति इसे अनुभव करता और होते हुए देखता है।

ज्ञान के दो प्रकार हैं — पहला मानसिक ज्ञान जैसा कि तुम बता रहे हो जो सामान्यतः मानसिक तैयारी अथवा मार्गदर्शन के लिए होता है और दूसरा वास्तविक ज्ञान जो आध्यात्मिक होता है। व्यक्ति मानसिक ज्ञान उपदेश और मार्गदर्शन के रूप में गुरु से प्राप्त करता है किन्तु यह केवल उसका एक अंश होता है जो वह देता है — क्योंकि जो व्यक्ति केवल मानसिक ज्ञान या जिसे तुम अप्रत्यक्ष ज्ञान कहते हो, देता है वह गुरु नहीं वरन् केवल एक शिक्षक या आचार्य है। जहाँ तक आध्यात्मिक ज्ञान का प्रश्न है — इसमें दो तत्व शामिल हैं — अनुभूति तथा प्रत्यक्ष ज्ञान जो मानसिक नहीं बल्कि प्रकाश के समान है जो वस्तुओं के गहनतर सत्य को दिग्दर्शित करता है, एक प्रत्यक्ष अन्तर्दृष्टि और सत्य का प्रत्यक्ष बोध।

CWSA Vol.29, p. 197-98

— श्री अरविन्द

गुरु की आवश्यकता

हिन्दू आध्यात्मिक अनुशासन इष्ट देवता, अवतार तथा गुरु के सिद्धान्तों के द्वारा आत्मा को यह आवश्यकता मुहैया करता है । इष्ट देवता या इच्छित देवता का तात्पर्य कोई निम्न शक्ति से नहीं बल्कि लोकातीत और वैश्व भगवान के नाम तथा रूप से है । करीब सभी धर्मों में भगवान के ऐसे कुछ नाम तथा रूप उनके आधार हैं या उन्होंने इनका उपयोग किया है । मानव आत्मा के लिए इसकी आवश्यकता स्पष्ट है । भगवान सब कुछ हैं और सब कुछ से भी अधिक हैं । परन्तु जो चीज सर्वस्व से भी अधिक है, मनुष्य उसकी कल्पना कैसे करेगा ? सर्वस्व की भी कल्पना करना आरम्भ में उसके लिए अत्यन्त कठिन है, क्योंकि वह स्वयं अपनी सक्रिय चेतना में एक सीमित तथा चयनात्मक रूपायन है तथा अपने को केवल उसी के प्रति उद्घाटित कर सकता है जो उसकी सीमित प्रकृति के साथ समस्वर है । सर्वस्व में ऐसी चीजें हैं जो उसकी बोध क्षमता से अधिक विलिप्त हैं अथवा उसकी संवेदनशील भावनाओं और संकुचनशील अनुभवों के प्रति अत्यन्त भयानक प्रतीत होती हैं । अथवा, आसानी से वह, भगवान क्या है, इसकी कल्पना नहीं कर सकता, वह ऐसी चीज तक पहुँच नहीं सकता या ऐसी चीज को पहचान नहीं सकता जो उसके अज्ञानमय या आंशिक धारणाओं के घेरे से बहुत-बहुत बाहर है । यह उसके लिए आवश्यक है कि वह अपनी ही छवि पर भगवान की कल्पना करे या किसी ऐसे रूप में जो उससे परे तो हो किन्तु उसकी उच्चतम प्रवृत्तियों के साथ समस्वर हो तथा उसकी भावनाओं या बुद्धि के द्वारा ग्राह्य हो । अन्यथा उसके लिए भगवान के साथ सम्पर्क में आना कठिन होगा ।

इसके बावजूद, उसका स्वभाव एक मानव माध्यम की मांग करता है जिससे वह अपनी ही मानवता के साथ पूर्ण रूप से किसी घनिष्ठ चीज में भगवान को महसूस कर सके तथा मानवीय प्रभाव तथा दृष्टान्त के प्रति संवेदनशील हो सके ।

इस आवश्यकता की पूर्ति मानव में भागवत अभिव्यक्ति, अवतार — कृष्ण, क्राइस्ट, बुद्ध — द्वारा हो जाती है । अथवा यदि उसके लिए इसकी कल्पना करना अत्यन्त कठिन हो, तब भगवान अपने को कम उत्कृष्ट माध्यम — पैगम्बर या गुरु के द्वारा प्रस्तुत करते हैं । जो या तो कल्पना नहीं कर सकते अथवा मनुष्य के रूप में भगवान को स्वीकार नहीं कर सकते, वे अपने को सर्वोच्च मानव के प्रति उद्घाटित करने को तैयार हैं और उसे वे अवतार नहीं परन्तु विश्व गुरु या भगवान के प्रतिनिधि मानते हैं ।

यह भी पर्याप्त नहीं है; एक जीवन्त प्रभाव, एक जीवन्त दृष्टान्त, एक वर्तमान

शिक्षा या उपदेश की आवश्यकता होती है। क्योंकि केवल थोड़े ही लोग अतीत के गुरु और उसकी शिक्षा को, प्राचीन अवतार और उसके दृष्टान्त और प्रभाव को अपने जीवन में एक जीवन्त प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। इस जरूरत के लिए भी हिन्दू अनुशासन गुरु-शिष्य का सम्बन्ध प्रदान करता है। गुरु कभी-कभी अवतार या विश्व-गुरु हो सकता है। परन्तु इतना ही पर्याप्त है कि वह शिष्य के लिए भागवत प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व करे, उसे भागवत आदर्श के बारे में कुछ बताये या शाश्वत सत्ता के साथ मानव आत्मा के तादात्म्य की सिद्धि की अनुभूति कराये।

पूर्ण योग का साधक अपनी प्रकृति के अनुसार इन सभी साधनों का उपयोग करेगा। किन्तु यह आवश्यक है कि उसे उनकी सीमितताओं का त्याग कर दे तथा अपने आप पर से अहंकारात्मक मन की उस एकनिष्ठ प्रवृत्ति को उतार फेंके जो “मेरा भगवान, मेरा अवतार, मेरा पैगम्बर, मेरा गुरु” चिल्लाता है और साम्प्रदायिक या कट्टरपंथी भावना से अन्य समस्त सिद्धि का विरोध करता है। समस्त सम्प्रदायवाद, समस्त कट्टरपंथी विचार का त्याग करना होगा, क्योंकि यह भागवत सिद्धि की पूर्णता के साथ मेल नहीं खाता।

इसके विपरीत, पूर्ण योग का साधक तब तक सन्तुष्ट नहीं होगा जब तक उसने अपनी धारणा में देवता या भगवान के अन्य नामों तथा रूपों को सम्मिलित नहीं कर लिया हो, अपने इष्ट देवता को अन्य सब में देख न लिया हो, भगवान के एकत्व में जो अवतार में अवतरित होता है, सभी अवतारों को समेकित न कर लिया हो तथा सनातन प्रज्ञा की सुसंगति में सभी शिक्षाओं के सत्य को संयुक्त न कर लिया हो। और न ही उसे इन बाह्य साधनों के लक्ष्य को भूलना चाहिये जो उसकी आत्मा को उसके अन्तस्थ भगवान के प्रति जाग्रत करना होता है। कुछ भी अन्ततः पूर्ण रूप से सम्पादित नहीं होता यदि यह काम पूरा नहीं कर लिया जाता। बाहरी कृष्ण, क्राइस्ट या बुद्ध की आराधना काफी नहीं होती यदि बुद्ध, क्राइस्ट या कृष्ण का उद्घाटन और रूपायन हमारे अन्दर नहीं हो जाता। और सभी अन्य साधनों का समान रूप से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। प्रत्येक साधन मनुष्य की अपरिवर्तित स्थिति तथा उसके अन्तस्थ भगवान के रहस्योद्घाटन के बीच एक सेतु का काम करता है।

पूर्ण योग का गुरु यथाशक्ति हमारे अन्तस्थ गुरु की विधि का पालन करेगा। वह शिष्य का मार्गदर्शन शिष्य के स्वभाव के अनुसार करेगा। शिक्षा, दृष्टान्त, प्रभाव – ये गुरु के तीन उपकरण हैं। परन्तु ज्ञानी गुरु ग्रहणशील मन की निष्क्रिय स्वीकृति पर अपने को या अपने विचारों को आरोपित करना नहीं चाहेगा। वह उसके अन्दर बीज

के रूप में फलोत्पादक तथा सुनिश्चित चीजें केवल डालेगा जो अन्दर दिव्य पालन-पोषण के अधीन वर्द्धित होगा । वह उपदेश देने की अपेक्षा जाग्रत करना अधिक चाहेगा । वह उसकी क्षमताओं तथा अनुभूतियों की वृद्धि स्वाभाविक प्रक्रिया तथा मुक्त प्रसारण के द्वारा करना अपना लक्ष्य बनायेगा । वह विधि बतायेगा एक साधन या उपयोगी उपकरण के रूप में, न कि एक आवश्यक सूत्र या एक अटल दिनचर्या के रूप में । और वह हमेशा इस बात से सावधान रहेगा कि कोई साधन सीमा बन्धन न बन जाये, कोई प्रक्रिया मात्र यान्त्रिक न रह जाये । उसका सम्पूर्ण दायित्व या व्यापार है दिव्य ज्योति जगाना तथा दिव्य शक्ति को क्रियाशील करना जिसका वह स्वयं केवल एक उपकरण है, एक साधन, एक माध्यम या एक प्रणाल है ।

ज्ञानोपदेश की अपेक्षा दृष्टान्त अधिक शक्तिशाली होता है, परन्तु बाह्य कार्यकलापों का दृष्टान्त नहीं और न व्यक्तिगत चरित्र का ही दृष्टान्त महत्वपूर्ण होता है । इनका निस्सन्देह अपना स्थान है और इनकी अपनी उपयोगिता है, परन्तु दूसरों में जो सर्वाधिक अभीप्सा को जाग्रत करेगा वह है उसके सम्पूर्ण जीवन को, उसकी स्थिति तथा उसकी सभी गतिविधियों को अनुशासित करने वाली उसके अन्दर की दिव्य सिद्धि का केन्द्रीय तथ्य । यह विश्वव्यापक तथा अनिवार्य तत्त्व है । शेष सब व्यक्तिगत तथा परिस्थितिगत चीजें हैं । इसी गत्यात्मक सिद्धि का अनुभव साधक को करना होगा तथा अपनी प्रकृति के अनुसार इसे अपने अन्दर पुनरुत्पादित करना होगा । उसे बाहर से नकल करने का प्रयास करने की जरूरत नहीं है जो उचित तथा स्वाभाविक फलोत्पादन की अपेक्षा अनुर्वर हो सकता है ।

प्रभाव दृष्टान्त से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । प्रभाव शिष्य के ऊपर गुरु का बाहरी अधिकार नहीं होता, बल्कि वह उसके सम्पर्क, उसकी उपस्थिति, उसकी आत्मा की एक दूसरी आत्मा के साथ निकटता की शक्ति है जो यद्यपि नीरवता में ही उसमें वह चीज संचारित कर देता है जो वह स्वयं है और जो उसके पास है । यह गुरु का सर्वोच्च चिह्न है, क्योंकि महानतम गुरु एक शिक्षक या ज्ञानोपदेशक की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली उपस्थिति होता है जो अपने चतुर्दिक सभी ग्रहणशील व्यक्तियों में दिव्य चेतना तथा इसकी मूलभूत ज्योति, शक्ति, शुद्धता तथा परमानन्द उंडेलता रहता है ।

और पूर्ण योग के गुरु का यह भी एक चिह्न होगा कि वह मानवीय दंभ और अहंकार भावना में अपने आपको गुरु कहने का दावा नहीं करता । उसका कार्य, यदि कोई है, तब वह है ऊपर से, भगवान की ओर से एक उत्तरदायित्व । वह स्वयं एक माध्यम है, एक पात्र, एक प्रतिनिधि । वह एक मानव है जो अपने भाइयों की मदद करता है । एक बालक जो अन्य बालकों को राह दिखाता है । एक ज्योति जो दूसरी

ज्योतियों को प्रदीप्त करती है । एक जाग्रत आत्मा जो अन्य आत्माओं को जाग्रत करती है । अधिक से अधिक वह भगवान की एक शक्ति या उपस्थिति है जो भगवान की अन्य शक्तियों को अपने निकट बुलाती है ।

CWSA Vol.23, pp. 65-68

— श्री अर विन्द

गुरु के प्रति समर्पण

गुरु के प्रति समर्पण को सभी समर्पणों से परे माना जाता है, क्योंकि इसके माध्यम से तुम न केवल निर्वैयक्तिक भगवान को बल्कि वैयक्तिक भगवान को, न केवल अपने स्वयं में स्थित भगवान को बल्कि अपने से बाहर भगवान को भी समर्पित करते हो । तुम अहंकार का अतिक्रमण करने का अवसर प्राप्त करते हो न केवल आत्मन में निर्वर्तन द्वारा जहाँ अहं का अस्तित्व नहीं है, वरन व्यक्तिगत प्रकृति में जहाँ अहं का शासन है । यह सम्पूर्ण भगवान के प्रति सम्पूर्ण समर्पण के संकल्प का संकेत है, *समग्रं मां मानुषीं तनुं आश्रितम्* । निस्सन्देह यह सब सच्चा होने के लिए समर्पण को निष्कपट और यथार्थ आध्यात्मिक समर्पण होना होगा ।

CWSA Vol.29, p. 193

---- श्री अर विन्द

गुरु को सब प्रकार से स्वीकार किया जाना चाहिये — लोकातीत, निर्वैयक्तिक, वैयक्तिक ।

गुरु योग में मार्गदर्शक होता है । जब भगवान को मार्गदर्शक स्वीकार किया जाता है तब उसे गुरु के रूप में स्वीकार किया जाता है ।

सामान्य रूप से अतिमानसिक योग में गुरु शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता । यहाँ प्रत्येक चीज स्वयं भगवान से आती है । परन्तु यदि कोई गुरु चाहता है तब तात्कालिक रूप से इसका उपयोग कर सकता है ।

अतिमानसिक योग में गुरु का स्थान

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध अनेक सम्बन्धों में से एक है जो व्यक्ति भगवान के साथ रख सकता है और इस योग में, जिसका लक्ष्य है अतिमानसिक सिद्धि, सामान्यतः यह नाम इसे नहीं दिया जाता । भगवान को उद्गम और प्रकाश,

ज्ञान, चेतना तथा आध्यात्मिक सिद्धि का जीवन्त सूर्य माना जाता है । और यह सब जो व्यक्ति ग्रहण करता है वहीं से आता हुआ महसूस होता है तथा सम्पूर्ण सत्ता भागवत हाथ के द्वारा पुनर्निर्मित की जाती है । यह मानव-गुरु तथा शिष्य के सम्बन्ध से जो अधिक सीमित मानसिक आदर्श के स्तर का है — महानतर तथा घनिष्ठतर सम्बन्ध है । फिर भी, यदि मन को अधिक परिचित मानसिक धारणा की आवश्यकता है, तब इसे, जब तक जरूरत हो, रखा जा सकता है । केवल आत्मा को इस सम्बन्ध द्वारा आबद्ध नहीं किया जाना चाहिये और न ही भगवान के साथ अन्य सम्बन्धों के प्रवाह तथा अनुभूति के विशालतर रूपों को इसके द्वारा सीमित किया जाना चाहिये ।

नहीं, भगवान के प्रति समर्पण और गुरु के प्रति समर्पण दोनों एक ही चीज नहीं हैं । गुरु के प्रति समर्पण करने में, उसके भीतर भगवान को ही व्यक्ति अपने को समर्पित करता है — यदि वह केवल मानव अस्तित्व है तब वह अप्रभावी होगा । परन्तु भागवत उपस्थिति की चेतना ही गुरु को सच्चा गुरु बनाती है जिससे यदि शिष्य उसे मनुष्य समझ कर भी उसे समर्पण करता है तब भी वह उपस्थिति इसे प्रभावकारी बना देगी ।

एक गुरु के प्रति निष्ठा

सभी सच्चे गुरु एक जैसे, एक गुरु होते हैं, क्योंकि सब में एक ही भगवान होते हैं । यह आधारभूत तथा विश्वव्यापक सत्य है । परन्तु भिन्नता का भी एक सत्य है । भगवान भिन्न-भिन्न व्यक्तित्वों में भिन्न-भिन्न मनो, शिक्षाओं, प्रभावों के साथ निवास करते हैं जिससे वे भिन्न-भिन्न शिष्यों का उनकी विशिष्ट आवश्यकता, आचरण, नियति के साथ भिन्न-भिन्न तरीकों के द्वारा सिद्धि की ओर मार्गदर्शन कर सकें । क्योंकि सब गुरु में एक ही भगवान हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि शिष्य एक गुरु को छोड़ कर जो उसके लिए निर्दिष्ट है किसी दूसरे गुरु के पास जाने पर भी सिद्धि प्राप्त कर लेगा । भारतीय परम्परा के अनुसार प्रत्येक शिष्य से एकनिष्ठ गुरुभक्ति की मांग की जाती है । “सभी एक ही हैं” — यह आध्यात्मिक सत्य है, परन्तु तुम इसे अविवेकपूर्णता के साथ कार्यान्वित नहीं कर सकते । तुम सभी व्यक्तियों के साथ एक ही तरीके से इसलिए निपट नहीं सकते क्योंकि वे एक ही ब्रह्म हैं । यदि कोई करेगा तो

परिणाम भयानक रूप से अस्त-व्यस्त हो जायेगा । अनम्य मानसिक तर्क के कारण कठिनाई उपस्थित हो जाती है, परन्तु आध्यात्मिक बातों में मानसिक तर्क आसानी से भूल कर जाता है । ऐसी बातों में अन्तर्भास, श्रद्धा, एक सुनम्य आध्यात्मिक तर्कसंगति एक मात्र पथ-प्रदर्शक होते हैं ।

CWSA Vol.29, p. 194

— श्रीअरविन्द

गुरु की क्षमता

जब चैत्य उद्घाटन, श्रद्धा तथा समर्पण हो तब गुरु के मानवीय दोष बाधक नहीं होते । गुरु अपने व्यक्तित्व या अपनी उपलब्धि के परिमाण के अनुसार भगवान का माध्यम या प्रतिनिधि या अभिव्यक्ति होता है, परन्तु चाहे वह कुछ भी हो, व्यक्ति उसकी ओर उद्घाटित होने में भगवान की ही ओर उद्घाटित होता है । और यदि माध्यम की शक्ति द्वारा कुछ निर्धारित किया जाता है तब उससे भी अधिक वह ग्राही चेतना की अन्तर्निहित तथा अन्तर्भूत मनोवृत्ति द्वारा निर्धारित होता है । सतही मन में एक निष्कपट विश्वास या सीधा बेशर्त आत्मदान के रूप में यह एक तत्व होता है । यदि एक बार वह आ जाये तब आवश्यक चीजें ऐसे व्यक्ति से भी उपलब्ध की जा सकती हैं जो अन्य लोगों की दृष्टि में अवर आध्यात्मिक उद्गम प्रतीत होता हो । बाकी चीजें साधक में भागवत कृपा से अपने आप वर्धित होंगी, बावजूद इसके कि यदि गुरु का मानवीय पक्ष वे चीजें देने में असमर्थ हो ।... मैं स्वयं अपने आन्तरिक जीवन के निर्णायक मोड़ के लिए एक ऐसे व्यक्ति का ऋणी हूँ जो बुद्धि, शिक्षा तथा योग्यता में मुझसे अनन्त रूप में निम्न थे तथा किसी भी दृष्टि से आध्यात्मिक पूर्णता या सर्वोच्चता उनमें नहीं थी । परन्तु उनके पीछे एक शक्ति को देख कर और सहायता के लिए उनकी ओर उन्मुख होने का निर्णय लेकर मैंने उनके हाथों में पूर्ण रूप से अपने आप को सौंप दिया तथा स्वचालित निष्क्रियता के साथ उनके पथ-प्रदर्शन का पालन किया । वे स्वयं चकित थे और दूसरों को उन्होंने कहा कि उन्होंने पहले कभी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखा था जो अपने आप को पूर्ण तथा बिना कुछ बचाये या प्रश्न किये मददगार के मार्गदर्शन के प्रति समर्पित कर दे । परिणाम यह हुआ कि मुझे ऐसी प्रकृति की रूपान्तरकारी अनुभूतियाँ हुईं कि वे समझ नहीं पाये और उन्हें

अन्ततः यह कहना पड़ा कि मैं भविष्य में समर्पण की उसी सम्पूर्णता के साथ जो मैंने मानवीय माध्यम के प्रति अपने को सौंपा था, अपने अन्तस्थ मार्गदर्शक को सौंप दूँ । मैं यह दिखाने के लिए यह उदाहरण दे रहा हूँ कि चीजें कैसे काम करती हैं । यह मानवीय तर्क जैसे परिकल्पित ढंग से निर्धारित करता है वैसे नहीं बल्कि अधिक रहस्यमय ढंग से और महत्तर विधान द्वारा निर्धारित किया जाता है ।

व्यक्ति अपने से कम या अन्य गुरुओं से कम आध्यात्मिक योग्यता का ऐसा गुरु स्वीकार कर सकता है जिसमें अनेक मानवीय त्रुटियाँ हों, फिर भी, यदि तुम्हारे अन्दर श्रद्धा है, भक्ति है, समुचित आध्यात्मिक उपादान है, तब तुम उसके माध्यम से भगवान के साथ सम्पर्क कर सकते हो, आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त कर सकते हो, और स्वयं गुरु से पहले आध्यात्मिक सिद्धि उपलब्ध कर सकते हो । “यदि” पर ध्यान दो, क्योंकि वह शर्त अनिवार्य है । प्रत्येक शिष्य प्रत्येक गुरु के साथ ऐसा कर सकता है । एक घोखेबाज से धोखे के अलावा और कुछ तुम नहीं प्राप्त कर सकते । गुरु के पास कुछ ऐसी चीज अवश्य होनी चाहिये जिससे भगवान के साथ सम्पर्क स्थापित हो सके, ऐसी चीज जो, इसकी क्रिया के प्रति गुरु अपने बाह्य मन में सचेतन न भी हो, तब भी, वह क्रिया करे । यदि उसमें कुछ भी आध्यात्मिक तत्व न हो, तब वह गुरु नहीं है, केवल एक छद्म है । निस्सन्देह एक गुरु तथा दूसरे गुरु के बीच आध्यात्मिक सिद्धि में बहुत अन्तर हो सकता है किन्तु गुरु और शिष्य के बीच आन्तरिक सम्बन्ध पर बहुत कुछ निर्भर करता है । व्यक्ति बहुत महान आध्यात्मिक गुरु के पास जाकर भी उससे कुछ नहीं या बहुत अल्प प्राप्त कर सकता है । व्यक्ति कम आध्यात्मिक क्षमता के गुरु के पास जाकर भी उससे वह सब प्राप्त कर सकता है जितना वह दे सकता है — तथा अधिक भी । इस असमानता के कारण विविध तथा सूक्ष्म हैं, यहाँ उन्हें विस्तारित करने की आवश्यकता नहीं है । यह प्रत्येक व्यक्ति के साथ भिन्न होता है । मैं विश्वास करता हूँ कि गुरु, जितना दिया जा सकता है उतना देने के लिए हमेशा तैयार रहता है, यदि शिष्य ग्रहण कर सके या ग्रहण करने के लिए तैयार हो । यदि वह ग्रहण करने से इनकार करता है या आन्तरिक या बाह्य रूप से इस प्रकार आचरण करता है जिससे ग्रहण करना असम्भव हो जाये या यदि वह निष्कपट न हो या अनुचित मनोवृत्ति अपनाता है, तब चीजें कठिन हो जाती हैं । परन्तु

यदि व्यक्ति निष्कट तथा निष्ठावान है और उचित मनोवृत्ति रखता है और यदि गुरु एक सच्चा गुरु है, तब, समय जितना लगे, यह आयेगा ।

CWSA Vol.29, p. 199

— श्रीअरविन्द

रामकृष्ण ने दूसरों को देने से पूर्व स्वयं सिद्धि प्राप्त कर ली थी । बुद्ध ने भी ऐसा ही किया था । मैं किसी अन्य के विषय में नहीं जानता । पूर्णता का तात्पर्य निस्सन्देह अपने पथ में सिद्धि से है । रामकृष्ण हमेशा कहा करते थे कि नियम के अनुसार व्यक्ति को दूसरों का गुरु नहीं बनना चाहिये जब तक व्यक्ति को पूर्ण अधिकार न हो ।

CWSA Vol.29, p. 200

— श्रीअरविन्द

शिक्षक की अपेक्षा गुरु की शक्ति सीमित होती है जो रास्ता दिखाता है परन्तु मदद या मार्गदर्शन नहीं कर सकता — यह योग के कुछ मार्गों का सिद्धान्त है जैसे शुद्ध अद्वैतवादी तथा बुद्धवादी जो बताते हैं कि तुम्हें अपने आप पर निर्भर करना होगा और कोई अन्य मदद नहीं कर सकता । परन्तु शुद्ध अद्वैतवादी भी वास्तव में गुरु पर निर्भर करता है तथा बुद्धवाद का मुख्य मंत्र बुद्ध शरणम् पर आग्रह करता है । साधना के अन्य मार्गों के लिए, विशेष कर जो गीता के समान, व्यक्तिगत आत्मा को भगवान के “शाश्वत अंश” के रूप में स्वीकार करते हैं या जो यह विश्वास करते हैं कि भगवान और भक्त दोनों सद्वस्तु हैं, गुरु की सहायता को एक अनिवार्य साधन के रूप में स्वीकार किया गया है ।

अब तक किसी मुक्ति-प्राप्त व्यक्ति ने गुरुवाद पर आपत्ति नहीं की है । सामान्यतः केवल वे जो मन या प्राण में रहते हैं तथा जिनमें मन का अहंकार तथा प्राण का अक्खड़पन है, गुरु को मान्यता देना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझते हैं ।

हाँ, यह प्राण में एक दोष है, अनुशासन पालन करने के संकल्प की कमी । व्यक्ति को मास्टर से सीखना पड़ता है तथा उसके आदेशों के अनुसार कार्य करना पड़ता है, क्योंकि मास्टर विषय को जानता है और यह भी जानता है

कि इसे कैसे सीखा जाता है — ठीक वैसे ही जैसे आध्यात्मिक चीजों में व्यक्ति को एक ऐसे गुरु के निर्देशन का पालन करता है जिसके पास ज्ञान है और पथ की जानकारी है । यदि व्यक्ति अपने आप सब कुछ सीखता है तब सम्भव है कि वह सब कुछ गलत सीखेगा । गलत सीखने की स्वाधीनता का क्या उपयोग है ? निस्सन्देह, यदि छात्र मास्टर से अधिक बुद्धिमान है तब वह मास्टर से अधिक सीखेगा, ठीक वैसे ही जैसे एक अधिक सामर्थ्यशाली शिष्य ऐसी सिद्धि प्राप्त कर लेगा जो गुरु के पास नहीं है — किन्तु फिर भी, नियन्त्रण तथा अनुशासन प्रारम्भिक चरणों में अनिवार्य है ।

कठिनाई में गुरु की सहायता

मैं समझता हूँ कि रामकृष्ण का यह कथन कि “गुरु की कृपा से सभी कठिनाइयाँ पलभर में गायब हो सकती हैं जैसे युगों का अन्धकार दियासलाई की तिल्ली रगड़ते ही अदृश्य हो जाती है” — साधना में एक विशेष लक्षण का द्योतक है तथा इसका अर्थ सामान्य तथा चरम रूप से नहीं निकाला जा सकता क्योंकि उस अर्थ में इसका सत्य होना कठिन है । एक मिनट में सभी कठिनाइयों का गायब होना ? अच्छा ! विवेकानन्द पर आरम्भ से ही रामकृष्ण की कृपा थी, किन्तु, मैं समझता हूँ कि उनकी सन्देह की कठिनाई कुछ समय तक बनी रही और क्रोध पर नियन्त्रण की कठिनाई उनके जीवन के अन्त तक नहीं गई । उन्होंने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि मेरे अन्दर की सभी शुभ चीजें गुरु के वरदान हैं परन्तु ये चीजें (क्रोध आदि) मेरी अपनी सम्पदा हैं । परन्तु यह सच हो सकता है कि केन्द्रीय कठिनाई गुरु और शिष्य के बीच एक खास स्पर्श से दूर की जा सकती है ।

लेकिन कृपा का तात्पर्य क्या है ? यदि यह गुरु की सामान्य करुणा और अनुग्रह-दृष्टि है, तब, व्यक्ति सोचेगा, यह तो हमेशा शिष्य के ऊपर रहती है । उसकी स्वीकृति स्वयं कृपा की एक क्रिया है और शिष्य के लिए ग्रहण करने की सहायता है । किन्तु कृपा का स्पर्श, भागवत कृपा का सीधे या गुरु के माध्यम से आना एक विशिष्ट घटना है जिसके दो पक्ष हैं, — एक ओर गुरु कृपा या भागवत कृपा, वास्तव में दोनों एक साथ तथा दूसरी ओर शिष्य में “कृपा की स्थिति” (state of grace) । कृपा की स्थिति प्रायः एक लम्बी तपस्या या शुद्धीकरण द्वारा तैयार की जाती है जिसमें कुछ भी निर्णायक होता

प्रतीत नहीं होता, अधिक से अधिक केवल स्पर्श या झलक या अस्थायी अनुभूति होती है और यह अचानक बिना पूर्वाभास के आती है। यदि रामकृष्ण के कथन में यही बात है तब यह सच है कि जब यह आती है तब क्षण भर में आधारभूत कठिनाइयाँ गायब हो सकती हैं और सामान्यतः गायब हो जाती हैं। अथवा कम से कम, कुछ ऐसी चीज हो जाती है जिससे शेष साधना — चाहे यह कितनी लम्बी क्यों न हो — सुनिश्चित तथा सुरक्षित हो जाती है।

यह निर्णायक स्पर्श सर्वाधिक सरलतापूर्वक “बिल्ली के बच्चे” के समान लोगों या साधकों के जीवन में आता है जिनमें चैत्य तथा भावनात्मक प्राण के मध्य किसी बिन्दु पर गुरु या भगवान के प्रति एक द्रुत तथा निर्णायक समर्पण की गति आ जाती है। मैंने देखा है कि जब ऐसा होता है और ऐसी सचेतन केन्द्रीय निर्भरता होती है जो मन को भी तथा प्राण के शेष भाग को भी बाध्य करती हो तब आधारभूत कठिनाई दूर हो जाती है। यदि अन्य कठिनाइयाँ रह भी जाती हैं तब वे कठिनाइयों के समान नहीं लगतीं, वरन केवल ऐसी चीजें प्रतीत होती हैं जिन्हें आसानी से किया जा सकता है और जिनके लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं होती। कभी-कभी किसी तपस्या की आवश्यकता नहीं होती — व्यक्ति केवल उस शक्ति को, जो मार्गदर्शन कर रही या साधना कर रही प्रतीत होती है, चीजों को सुपुर्द कर देता है तथा विरोधी चीजों को अस्वीकृत करती हुई उसकी क्रिया के साथ सहमत हो जाता है तब शक्ति शीघ्र या देर से आवश्यकता के अनुसार चीजों को या तो हटा देती है या परिवर्तित कर देती है — किन्तु शीघ्रता या विलम्ब से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि व्यक्ति को दृढ़ निश्चय हो जाता है कि यह हो जायेगा। यदि तपस्या आवश्यक है तब यह एक सुदृढ़ सहारे की ऐसी अनुभूति के साथ हो जाती है कि तपस्या कठोर या कठिन संयम जैसी नहीं लगती।

दूसरों के लिए जो बन्दर के बच्चे के समान हैं या जो अधिक स्वतन्त्र हैं, जो अपने विचारों का अनुगमन करते हैं, जो अपनी निजी साधना करते हैं, पर केवल कुछ निर्देश या सहायता चाहते हैं — गुरु कृपा है, किन्तु यह साधक की प्रकृति के अनुसार कार्य करती है तथा अधिक या कम मात्रा में उसके प्रयास की प्रतीक्षा करती है। यह सहायता करती है, संकट में सहारा देती है, खतरे में बचाती है, किन्तु शिष्य इस बात से हमेशा सचेतन नहीं होता कि उसके लिए क्या किया जा रहा है, क्योंकि वह अपने आप में तथा अपने प्रयास में तल्लीन रहता है। ऐसे उदाहरणों में निर्णायक मनोवैज्ञानिक क्रिया, वह स्पर्श जो सब कुछ निर्विघ्न कर देगा, एक दीर्घ काल के बाद आ सकता है।

परन्तु सबके साथ कृपा बनी रहती है, एक या दूसरे प्रकार से कार्य करती है तथा यह शिष्य को केवल तभी परित्यक्त कर सकती है यदि शिष्य स्वयं इसे त्याग दे — एक निर्णायक तथा सुनिश्चित विद्रोह द्वारा, गुरु की अस्वीकृति द्वारा, सम्बन्ध-विच्छेद द्वारा और अपनी स्वाधीनता की घोषणा द्वारा अथवा विश्वासघात द्वारा जो उसे अपने ही चैत्य पुरुष से अलग कर देता है । तब भी शायद अन्तिम अवस्था को छोड़कर कृपा की वापसी असम्भव नहीं है ।

इस विषय में यही मेरा ज्ञान तथा अनुभव है । परन्तु रामकृष्ण के कथन के पीछे क्या तात्पर्य था और क्या वे इसे एक सामान्य तथा चरम उक्ति के रूप में कहना चाहते थे — मैं निर्णय नहीं करता ।

CWSA Vol.29, pp. 195-196

— श्रीअरविन्द

यह हमेशा कहा जाता है कि शिष्यों को स्वीकार करने का अर्थ है तुम्हारे अपने ऊपर शिष्यों की कठिनाइयों के साथ साथ अपनी भी लेना । निस्सन्देह यदि गुरु स्वयं को अपने शिष्य के साथ तदात्म नहीं करता, उसे अपनी निजी चेतना में ग्रहण नहीं करता, उसे बाहर रखता है और उसे केवल उपदेश देता है और शेष कार्य उसे स्वयं करने के लिए छोड़ देता है, तब इन प्रभावों की संभावना बहुत कम हो जाती है ।

जब व्यक्ति सच्चाई के साथ समर्पण करता है तब कुछ भी छिपाना नहीं होगा यानी जो भी साधना के जीवन के लिए महत्वपूर्ण हो । दोष-स्वीकृति विरोधी तत्वों की चेतना को शुद्ध करने में मदद करती है और यह आन्तरिक वायु को निर्मल करती है । यह गुरु और शिष्य के बीच अधिक घनिष्ठ तथा प्रभावकारी सम्बन्ध स्थापित करने में अनुकूल वातावरण तैयार करती है ।

SABCL Vol.23, pp. 614-623

— श्रीअरविन्द

एक विराटतर योजना के निस्तब्ध परिवेश में,
अदृश्य के द्वारमंडप पर रखता वह चरण,
अथवा एक अदेह गुरु का करता हुआ अनुगमन,
वह सुनता है असीम शून्य में एक मात्र पुकार ।
सावित्री, पृ.८०

यदि तुम सचमुच...

यदि तुम सचमुच मुझे गुरु स्वीकार करते हो और अपने आपको मुझे समर्पित करते हो तब तुम्हें मेरे सत्य को स्वीकार करना होगा । मेरा सत्य अज्ञान तथा मिथ्यात्व को अस्वीकार करता है और ज्ञान की ओर जाता है, अन्धकार को इनकार करता है तथा प्रकाश की ओर जाता है, अहंकार को निराकृत करता है और आत्मन की ओर जाता है, अपूर्णताओं का निराकरण करता है और पूर्णता की ओर जाता है । मेरा सत्य केवल भक्ति अथवा चैत्य विकास का सत्य नहीं है, बल्कि ज्ञान, विशुद्धता, भागवत शक्ति तथा अचंचलता का और इन सबके उनके मानसिक, भावनात्मक तथा प्राणिक रूपों से उनका अतिमानसिक सद्वस्तु तक उत्थापन का भी सत्य है ।

मैं यह सब तुम्हारी साधना का अवमूल्यन करने के लिए नहीं कहता हूँ बल्कि तुम्हारे मन को इसकी वर्धनशील सम्पूर्णता और पूर्णता के मार्ग की ओर मोड़ने के लिए कहता हूँ ।

तुम्हें यहाँ अभी रखना मेरे लिए सम्भव नहीं है । प्रथम, क्योंकि आवश्यक परिस्थितियाँ तैयार नहीं हैं और दूसरा, क्योंकि यहाँ आने से पूर्व तुम्हें पूर्ण रूप से मेरे मार्गदर्शन को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना होगा । जैसा कि मैं समझता हूँ वर्तमान परिस्थितियों में तुम्हें घर चले जाना है, वहाँ ध्यान करो, अपने आपको मेरी ओर मोड़ो और अपने को तैयार करने की कोशिश करो जिससे तुम बाद में यहाँ आ सको । तुम्हें अभी जिसकी जरूरत है वह उतना चैत्य विकास नहीं है जो तुम्हें सदा मिलता रहेगा (मैं इसे बिलकुल बन्द करने के लिए नहीं कह रहा हूँ) बल्कि आन्तरिक अचंचलता और स्थिरता है जो तुम्हारे भावी विकास और अनुभूति के लिए सच्चा आधार और वातावरण बनायेगा, — अचंचलता मन में, शुद्धीकृत प्राणमय पुरुष में तथा भौतिक चेतना में । एक चैत्य-प्राणिक या चैत्य-भौतिक योग तुम्हारे लिए सुरक्षित न होगा जब तक तुम इस अचंचलता तथा सत्ता की सुनिश्चित शुद्धता और एक पूर्ण व हमेशा विद्यमान प्राणिक और भौतिक सुरक्षा नहीं प्राप्त कर लेते ।

SABCL Vol.23, p. 1049

— श्री अरविन्द

गुरु के बिना योग

जहाँ तक पत्र का सम्बन्ध है, मैं समझता हूँ कि तुम्हें पत्रलेखक को कहना पड़ेगा कि उसके पिता ने गुरु के बिना योग आरम्भ करके भूल की — क्योंकि गुरु के विषय में मानसिक विचार यथार्थ जीवन्त प्रभाव का स्थान नहीं ले सकता । इस योग में खास कर, जैसा कि मैंने अपनी पुस्तकों में लिखा है, गुरु की सहायता की जरूरत पड़ती है और इसके बिना इसे नहीं किया जा सकता ।

SABCL Vol.23, p. 1051

— श्रीअरविन्द

गीता के भागवत गुरु, सनातन अवतार

ऐसे हैं गीता के भागवत गुरु, सनातन अवतार, भगवान, जो मानव चेतना में अवतरित हुए, सभी भूतों के हृदय में स्थित परम प्रभु, वे जो परदे के पीछे से हमारे समस्त विचार, क्रिया तथा हृदय की चाह को मार्गदर्शित करते हैं, ठीक वैसे ही जैसे वे दृश्य तथा इन्द्रिय गोचर रूपों तथा शक्तियों तथा प्रवृत्तियों के परदे के पीछे से उस विश्व की विराट विश्वव्यापी क्रिया का संचालन करते हैं जिसे उन्होंने अपनी निजी सत्ता में अभिव्यक्त किया है । हमारे ऊर्ध्वगामी प्रयास और खोज का समस्त संघर्ष अपने परमोत्कर्ष को तब प्राप्त कर लेता है और एक सन्तुष्ट परिपूर्ति में समाप्त हो जाता है जब हम परदे को चीर कर अपनी सतही सत्ता के पीछे स्थित इस वास्तविक आत्मन को प्राप्त कर सकें, अपनी सत्ता के इस सच्चे प्रभु में अपनी समस्त सत्ता को विलीन कर सकें, इस यथार्थ व्यक्तित्व के प्रति अपने व्यक्तित्व को समर्पित कर सकें, अपनी सदा-छिन्न-भिन्न तथा सदा-अभिसरित मानसिक गतिविधियों को उनकी परिपूर्ण ज्योति में विलीन कर सकें, अपने पथभ्रष्ट तथा संघर्षशील संकल्प और ऊर्जाएं उनके विराट, ज्योतिर्मय तथा अविभाजित संकल्प को अर्पित कर सकें, अपनी सभी छितरायी बहिर्गामी कामनाओं और भावनाओं का उनके स्वयंभू परमानन्द के प्राचुर्य में एक साथ त्याग और उनकी सन्तुष्टि कर सकें । यही है जगद्गुरु जिसके सनातन ज्ञान का अन्य समस्त उच्चतम शिक्षा विविध प्रतिबिम्ब तथा आंशिक शब्द है, यही है परम वाणी जिसके प्रति हमारी आत्मा के श्रवण को जागना है ।

SABCL Vol.13, p. 17

— श्रीअरविन्द

श्रीमाँ द्वारा पूर्ण स्वीकृति

प्रश्न : जब व्यक्ति श्रीमाँ की देखरेख में योग करना आरम्भ करता है तब क्या श्रीमाँ द्वारा वह पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं कर लिया जाता ?

उत्तर : तब तक नहीं जब तक वह तैयार नहीं है । उसे पहले श्रीमाँ को स्वीकार करना है और फिर अधिक से अधिक अपने अहंकार का त्याग करना है । ऐसे साधक भी हैं जो हर कदम पर विद्रोह करते हैं, श्रीमाँ का विरोध करते हैं, उनके संकल्प का प्रतिवाद करते हैं, उनके निर्णयों की आलोचना करते हैं । ऐसी अवस्थाओं में वे कैसे उन सबका उत्तरदायित्व ले सकती हैं ?

२१.६.१९३३

— श्रीअरविन्द

प्रश्न : क्या गुरु, श्रीमाँ तथा आश्रम की कार्य प्रणाली, भगवान तथा हमारे योग में सत्य के बीच कोई अन्तर है ? मैं सोचता रहा हूँ कि श्रीमाँ तथा आप न केवल गुरु हैं, बल्कि भगवान भी हैं, और यह कि आप दोनों में से कोई जो कुछ कहते हैं वह सत्य का विधान है । तब आप (मेरे प्रश्न के उत्तर में) तीन भिन्न शब्दों का प्रयोग क्यों कर रहे हैं ?

उत्तर : मैंने आध्यात्मिक जीवन तथा आज्ञा-पालन का सामान्य विधान लिखा । तुम्हें यह जानना है, साथ ही यहाँ इसका विशेष उपयोग भी । इसके अतिरिक्त अधिक लोग यहाँ यह कह कर सन्तुष्ट हैं, “श्रीमाँ भगवान हैं” परन्तु वे उनका आदेश-पालन नहीं करते — अन्य सचमुच में उन्हें भगवान नहीं समझते — वे ऐसा व्यवहार करते हैं मानों वे साधारण गुरु हैं ।

१३.६.१९३३

— श्रीअरविन्द

प्रश्न : कल आपने श्रीमाँ के आदेशों के बारे में कहा था । वे क्या हैं ? मैं उनका पालन करने का प्रयास करना चाहता हूँ ।

उत्तर : यह विदित होना चाहिये । तुम्हें जो समुचित है वही करना चाहिये और निष्कपट भाव से, सच्चाई के साथ योग करना चाहिये ।

१४.६.१९३३

— श्रीअरविन्द

प्रश्न : हमें कहा गया है कि श्रीमाँ सर्वोत्तम रूप से क्रिया तब कर सकती हैं जब साधक निष्कपट और सच्चा है । किन्तु इसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर : निष्कपट और सच्ची साधना का तात्पर्य क्या है ? सच्चा और निष्कपट की

श्रीमाँ की परिभाषा है “केवल भागवत शक्तियों के प्रति उद्घाटन यानी अन्य सब को इनकार यदि वे आयें ।”

२१.४.१९३६

SABCL Vol.25, pp.222-23

— श्रीअरविन्द

गुरु, भगवान तथा अवतार

केवल अब तुम्हारे भेजे तीन पत्रों को पढ़ने का समय मिला । श्री अमुक निस्सन्देह *कनवर्सेशन्स* ले सकते हैं । तुम्हारे अन्य मित्र ने जो लिखा है वह ग्रहण करना उसके लिए वहीं जहाँ वह है यहाँ आये बिना, सम्भव है यदि उसके हृदय में श्रीमाँ के लिए श्रद्धा भाव और तीव्र पुकार है ।

अवतार के प्रश्न के बारे में, मैं नहीं समझता कि यह, इस विषय में जोर डालना उपयोगी होगा । गुरु को अवतार मानने की, खास कर बंगाल में सामान्य प्रवृत्ति हो गई है । प्रत्येक शिष्य के लिए गुरु भगवान है, किन्तु एक विशेष अर्थ में — क्योंकि ऐसा माना जाता है कि गुरु दिव्य चेतना में निवास करता है, भगवान के साथ एकत्व प्राप्त कर चुका है और जब वह शिष्य को देता है तब भगवान ही देते हैं और जो वह देता है वह भगवान की ही चेतना होती है जो गुरु में निवास करते हैं । किन्तु यह तथा अवतारवाद दो भिन्न चीजें हैं । अधिकतर हाल में पूर्वी बंगाल में जो गुरु आये वे अवतार माने गये । उनमें से प्रत्येक को उनके द्वारा विश्व के लिए अपने निर्धारित कर्म का तथा उनके माध्यम से क्रियाशील भागवत शक्ति का बोध था । इससे यह पता चलता है कि वहाँ अभिव्यक्ति के लिए दबाव था और प्रत्येक में कुछ शक्ति अवतरित हुई, क्योंकि पुकार होने पर भागवत शक्ति का कुछ अंश हमेशा आता ही है । परन्तु ऐसा नहीं लगता कि कहीं संपूर्ण अवतरण हुआ हो । इसी कारण यह धारणा बनी होगी कि अवतार वहाँ जन्म ले चुका है । अवतरण के विषय में हमेशा कहा गया है कि अब वह आयेगा और ऐसे अनेक लोग होंगे जिनमें ऐसा लगेगा कि यह आ गया है, किन्तु वास्तविक अवतार तब तक परदे के पीछे कार्य करेगा जब तक निर्दिष्ट मुहूर्त्त न आ जाये ।

तुम्हारे गुरु के उद्धृत कथन से कि उन्होंने अवतार होने का दावा किया है, मैं कुछ निष्कर्ष नहीं निकाल रहा हूँ । मुझे ऐसा लगता है कि उन्होंने ऐसी शक्ति होने का दावा किया है जो भगवती माता के कार्य के लिए मार्ग तैयार करेगी तथा यह भी संकेत करेगी कि वह सब, जो उनका तात्पर्य था, न केवल उनके अपने शिष्यों द्वारा

वरन अन्य समूहों (सम्प्रदाय) द्वारा अभिव्यक्त किया जायेगा जो उनके नहीं बल्कि किसी अन्य गुरु के अनुगामी होंगे । उनके कथन से यह भी पुष्ट हो गया है कि उनके शिष्यों की अपेक्षा कोई और उनके प्रकाश का साधन हो सकता है — यानी उनके कार्य को आगे बढ़ाने का साधन बन सकता है तथा भगवती माता की अभिव्यक्ति में सहायता कर सकता है । यदि इसका अर्थ उनके अवतार होने की घोषणा है तब मैं नहीं समझता कैसे यह उस दूसरे कथन से मेल खा सकता है कि उनके शरीर छोड़ने के बाद अवतार उनके बनाये आश्रम में आयेगा ।

मैं बिल्कुल नहीं जानता कि *अयोनि संभाव* का तात्पर्य क्या है । अवतार हमेशा मानव माता के माध्यम से आता है, यद्यपि एक या दो ऐसे उदाहरण हैं जिसमें कुमारी जन्म की घोषणा की गई है (क्राइस्ट, बुद्ध) । एक मात्र दूसरा अर्थ — जब तक हम अभूतपूर्व चमत्कार न मान लें — एक ऐसा अवतरण हो सकता है, जैसा कभी कभी होता है, कि भगवान किसी ऐसे व्यक्ति में अभिव्यक्त हों जो जन्म से विभूति मात्र हो, पूर्ण अवतार नहीं । परन्तु तुम्हारे गुरु के स्पष्ट वक्तव्य की अनुपस्थिति में ये सब मात्र अनुमान ही हैं ।

मैंने तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में यह सब लिखा है, परन्तु मुझे सन्देह है कि क्या तुम्हारे मित्रों को यह सब कुछ लिखना आवश्यक या उपयुक्त है ? इस विषय में उनकी अपनी धारणा है । मुझे लगता है कि उसे चुनौती नहीं देना या क्षुब्ध नहीं करना बेहतर है ।

SABCL Vol.25, pp.369-370

— श्रीअरविन्द

अनगिनत आत्माओं की पुकार और कोलाहल से हो जाग्रत,
 किसी गहन **असीम** के मर्मस्थल से होती उदित,
 प्रेम और आशा पर करती मुस्कान एक नवजात शिशु-सम,
 अपनी प्रकृति में करती आवासित **अमर्त्य** की शक्ति,
 अपने अन्तस्तल में करती धारण शाश्वत **संकल्प**
 उसे न थी आवश्यकता गुरु की अपने ज्योतिर्मय हृदय के अतिरिक्त :
 उस देवी के कदमों को कर सका न विकृत कोई पतन,
 आयी नहीं थी परकीय **निशा** उसके नेत्रों को कर देने दृष्टिहीन ।

सावित्री, पृ.१२७-१२८

योग में गोपनीयता अनिवार्य

आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति अपनी योजनाओं तथा गतिविधियों का रहस्योद्घाटन उनके समक्ष करे जिन्हें यह सब जानने से कोई मतलब नहीं है, जो यह सब समझने के योग्य नहीं हैं या जो शत्रु का काम करेंगे या यह सब जानने पर सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। आध्यात्मिक बातों में गोपनीयता पूर्णतः स्वीकार्य तथा सामान्य है। केवल गुरु के साथ शिष्य के विशेष सम्बन्ध में यह अपवाद है। हमलोग बाहरी लोगों को जानने नहीं देते कि आश्रम में क्या हो रहा है, किन्तु इसके बारे में झूठ भी नहीं बताते। अधिकांश योगी अपने आध्यात्मिक अनुभवों के बारे में दूसरों को कुछ नहीं बताते या बहुत समय बीत जाने के पहले नहीं कुछ कहते। प्राचीन गुह्यवादियों में गोपनीयता एक सामान्य नियम था। कोई नैतिक या आध्यात्मिक विधान हमें यह आदेश नहीं देता कि हम अपने आपको संसार के सामने अनावृत कर दें या सार्वजनिक निरीक्षण के लिए अपने दिल और दिमाग को खुलेआम प्रकट कर दें। गाँधी जी ने गोपनीयता को पाप बताया परन्तु यह उनकी अनेक उच्छृंखलताओं में से एक है।

SABCL Vol.26, p.380

— श्रीअरविन्द

गुरु के प्रति निर्विवाद श्रद्धा

गुरुवाद में गुरु के प्रति शिष्य का सम्बन्ध हमेशा आराधना का, सम्मान का, एक सम्पूर्ण प्रमुदित विश्वास तथा मार्गदर्शन की निर्विवाद स्वीकृति का होना चाहिये।

SABCL Vol.22, p.87

— श्रीअरविन्द

पुरुष को न केवल साक्षी बल्कि ज्ञाता तथा उद्गम, समस्त विचार तथा कर्म का स्वामी बनना है और यह मानसिक स्तर पर रहते हुए या मन, प्राण तथा शरीर के माध्यम से कार्य करते हुए केवल आंशिक रूप से किया जा सकता है। निस्सन्देह कुछ सीमा तक प्रभुत्व प्राप्त किया जा सकता है परन्तु प्रभुत्व रूपान्तरण नहीं है, इसके द्वारा लाया हुआ परिवर्तन इतना पर्याप्त नहीं होता कि वह पूर्ण कहा जा सके। इसके लिए अनिवार्य है कि न केवल मनोमय पुरुष, प्राणमय पुरुष तथा अन्नमय पुरुष से परे पीछे हटा जाये बल्कि अपने अन्दर और अधिक गहराई में अन्तर्तम व गहनतम चैत्य सत्ता तक जाया जाये — अथवा अपने को अतिचेतन उच्चतम क्षेत्रों के प्रति उद्घाटित किया जाये। आत्मा के इस ज्योतिर्मय गुह्य गृह में प्रवेश के लिए व्यक्ति को अपने अन्दर चैत्य केन्द्र तक सभी बाधक प्राणिक तत्वों का सामना करना

पड़ता है, चाहे यह प्रक्रिया कितनी दीर्घ और कठिन क्यों न हो । सभी मानसिक, प्राणिक तथा भौतिक दावों तथा चीख-पुकारों तथा आवेगों के आग्रह से अनासक्ति, हृदय में एकाग्रता, संयम, आत्म शुद्धीकरण तथा पुराने मानसिक तथा प्राणिक संस्कारों का त्याग, कामना के अहं का त्याग, मिथ्या आवश्यकताओं तथा मिथ्या आदतों का त्याग — ये हैं इस कठिन मार्ग के सभी उपयोगी साधन । परन्तु सबलतम, सर्वाधिक केन्द्रीय पथ है इन सभी विधियों को या अन्य विधियों को एक आत्मदान तथा अपने और प्रकृति के अपने सभी भागों को भागवत पुरुष, ईश्वर के प्रति समर्पण पर प्रतिष्ठित करना । एक मार्गदर्शक या गुरु के ज्ञानपूर्ण तथा अन्तर्भासात्मक निर्देशन का सख्ती से आज्ञापालन भी विशिष्ट रूप से कुछ प्रतिभाशाली जिज्ञासुओं को छोड़ कर सबके लिए सामान्य तथा आवश्यक विधि है ।

SABCL Vol.19, pp.906-907

— श्रीअरविन्द

अद्वैत तथा सांख्य विधि

एकाग्रता का परिणाम सामान्यतः तत्काल नहीं होता — यद्यपि कुछ लोगों में एक द्रुत तथा अचानक प्रस्फुटन हो जाता है । परन्तु अधिकांश लोगों के साथ अनुकूलन अथवा तैयारी में अधिक या कम समय लगता है, विशेषकर यदि अपनी प्रकृति को कुछ सीमा तक पहले से ही अभीप्सा तथा तपस्या के द्वारा तैयार नहीं किया गया हो । परिणाम आने के समय को कभी-कभी पुराने योग की प्रक्रिया की एकाग्रता की सहायता से कम किया जा सकता है । ज्ञान मार्ग की एक अद्वैत प्रक्रिया है — व्यक्ति अपने को मन, प्राण तथा शरीर के साथ तादात्म्य से इनकार करता है और निरन्तर यह कहता है, “मैं मन नहीं हूँ”, “मैं प्राण नहीं हूँ”, “मैं शरीर नहीं हूँ” और अपने को, अपनी वास्तविक सत्ता को इन सबसे पृथक् देखता है । कुछ समय के बाद व्यक्ति यह महसूस करने लगता है कि सभी मानसिक, प्राणिक, भौतिक प्रक्रियाएं तथा मन, प्राण व शरीर का बोध बाहर की चीजें हैं, बाहर की क्रियाएं हैं तथा अन्दर उनसे अनासक्त एक पृथक् स्वयंभू सत्ता का बोध होने लगता है जो वैश्व और लोकातीत आत्मन की सिद्धि में उद्घाटित होता है । एक और विधि भी है — एक अत्यन्त सशक्त विधि सांख्य की — पुरुष और प्रकृति की पृथक्कता । व्यक्ति मन पर साक्षी की स्थिति आरोपित करता है — मन, प्राण, भौतिक की समस्त क्रिया बाह्य क्रीड़ा बन जाती है जो मैं स्वयं नहीं या मेरी नहीं होती बल्कि प्रकृति की होती हैं । मैं साक्षी पुरुष हूँ, मैं नीरव हूँ, अनासक्त हूँ, इन चीजों द्वारा आबद्ध नहीं हूँ । परिणाम स्वरूप सत्ता में एक विभाजन की वृद्धि हो जाती है । साधक अपने भीतर

एक अचंचल, नीरव, पृथक् चेतना की वृद्धि का अनुभव करता है जो अपने को मन, प्राण तथा भौतिक प्रकृति की सतही क्रीड़ा से बिलकुल अलग महसूस करती है । सामान्यतः जब ऐसा हो जाता है, तब उच्चतर चेतना की शान्ति को, उच्चतर शक्ति की क्रिया को तथा योग की सम्पूर्ण प्रगति को बहुत तेजी से नीचे लाना सम्भव हो जाता है । परन्तु प्रायः शक्ति स्वयं एकाग्रता तथा पुकार के उत्तर में नीचे आ जाती है और यदि ये चीजें आवश्यक हों तब यह उन्हें नीचे लाती है तथा कोई अन्य साधन या प्रक्रिया का भी जो सहायक या अनिवार्य हों उपयोग करती है । एक चीज और । ऊपर से अवतरण तथा उसकी कार्यप्रणाली की इस प्रक्रिया में पूर्ण रूप से अपने ऊपर भरोसा नहीं करना बल्कि गुरु के निर्देशन पर विश्वास करना तथा जो भी उसके मन में विचार, निर्णय आये उसे गुरु को सुपुर्द कर देना अत्यन्त महत्वपूर्ण है । क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि निम्न प्रकृति की शक्तियाँ अवतरण द्वारा उत्तेजित हो जाती हैं तथा उसके साथ मिल कर अपने लाभ में उसे परिणत करना चाहती हैं । ऐसा भी प्रायः होता है कि कुछ शक्ति या शक्तियाँ जो अपनी प्रकृति में अदिव्य होती हैं अपने को परम प्रभु या भगवती माता के रूप में प्रस्तुत करती हैं और सत्ता की सेवा तथा समर्पण का दावा करती हैं । यदि ये चीजें स्वीकार कर ली जाती हैं तब अत्यन्त अनर्थकारी परिणाम होगा । यदि सचमुच केवल भागवत कार्यप्रणाली के प्रति साधक की सहमति हो और उनके मार्गदर्शक के प्रति निवेदन या समर्पण हो तब सब कुछ निर्विघ्न होगा । यह सहमति तथा समस्त अहंकारमूलक शक्ति या शक्तियों का इनकार पूरी साधना में रक्षा कवच का काम करते हैं । परन्तु प्रकृति के तौर-तरीके फन्दों से भरे हैं, अहंकार के छद्मवेश अनन्त हैं, अन्धकार की शक्तियों की भ्रान्तियाँ, राक्षसी माया, असाधारण रूप से पट्ट हैं । तर्क शक्ति अपर्याप्त मार्गदर्शक है और प्रायः विश्वासघाती बन जाती है । प्राणिक कामना हमेशा हमारे साथ रह कर किसी आकर्षक पुकार पर दौड़ जाने के लिए उकसाती रहती है । यही कारण है कि इस योग में क्यों हमलोग समर्पण पर इतना आग्रह करते हैं । यदि हृदय-केन्द्र पूरी तरह उद्घाटित है तथा हमेशा सब कुछ चैत्य के नियन्त्रण में है तब सब कुछ सुरक्षित है । परन्तु किसी भी क्षण चैत्य किसी निम्न प्रेरणा से आवृत हो सकता है । केवल कुछ ही लोग इन खतरों से बच पाते हैं और खास कर वे जिनके लिए समर्पण सरलता से सम्भव है । इस कठिन प्रयास में भगवान के साथ तदात्म व्यक्ति या उनके प्रतिनिधि का मार्गदर्शन अनिवार्य और अपरिहार्य है ।

SABCL Vol.24, pp.1168-1169

— श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द केम टु मि

चैप्टर - आठ

गुरु — द अलकेमिस्ट (कीमियागर)

प्रत्येक योगी को एक लम्बे समय तक जिस कठिनाई का सामना करना पड़ता है उस पर बल देने के लिए या उसके महत्व पर प्रकाश डालने के लिए मैं कुछ और आगे कहने का साहस करूंगा और यह कहूंगा कि जैसे ही व्यक्ति योग आरम्भ करता है, थोड़ा ही क्यों न करे, उसके अहंकार को प्रत्येक मोड़ पर नयी परीक्षाओं का सामना करना पड़ता है। यहाँ तक कि व्यक्ति प्रायः निराशा में योग करना छोड़ देना चाहता है। ऐसे संकट काल में केवल गुरु की प्रत्यक्ष सहायता तथा निरन्तर मार्गदर्शन ही निराशा के खतरनाक दलदल से व्यक्ति को उबार सकता है। केवल समस्या यह है कि गुरु की सहायता शिष्य के सहयोग के बिना शायद ही पूरी तरह प्रभावकारी हो। शिष्य में सामान्यतः साधना करने की अपेक्षा चमत्कार पर अधिक विश्वास करने की प्रवृत्ति होती है। यही कारण है कि गुरु की बार-बार चेतावनी के बावजूद उसमें तामसिक निष्क्रियता को सात्विक समर्पण समझ लेने की प्रवृत्ति होती है। दूसरा कारण है ख्याली पुलाव, चाहे यह कितना भी क्षण भंगुर क्यों न हो, जब तक रहता है आनन्ददायक होता है। यानी इस कुतर्क के बहकावे में एक सुखद अनुभूति होती है कि जब तक ऊपर के पर्यवेक्षक के साथ सबकुछ ठीक-ठाक है, नीचे हम कर्मचारियों के साथ कुछ गंभीर गड़बड़ नहीं हो सकती। मुझे स्पष्ट याद है जब मुझे एक सहकर्मी से एक बड़ा झटका लगा जिसने मुझे छिछोरेपन के साथ कहा, “जब व्यक्ति को सब समय संघर्ष करना ही पड़े तब व्यावहारिक बुद्धि के नाम पर गुरु बनाने का लाभ क्या हुआ ?” उसकी सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति तथा सुविधाजनक दृष्टिकोण ने शुरू से आखिर तक उसे यह समझने के लिए प्रेरित किया कि श्रीअरविन्द की शक्ति का चमत्कार ही हमसब की सभी कठिनाइयों का एकमात्र समाधान है। मैंने उसे कहा कि श्रीअरविन्द ने एक बार सुनिश्चित और स्पष्ट रूप से इस विषय पर नीरोद को यह लिखा था, “यह सोचना भूल है कि इसे या तो चमत्कारिक शक्ति होनी चाहिये अथवा कुछ भी नहीं। कोई चमत्कारिक शक्ति नहीं होती और मैं चमत्कारों का सौदा नहीं करता।” और तब “श्रीअरविन्द की शक्ति क्या है ? यह मेरे शरीर की व्यक्तिगत सम्पदा नहीं है, यह मेरे द्वारा प्रयुक्त अथवा मेरे माध्यम से क्रियाशील एक उच्चतर शक्ति है। निस्सन्देह यह भागवत शक्ति है, क्योंकि जगत में केवल एक ही शक्ति है, परन्तु यह यन्त्र की प्रकृति के अनुसार कार्य

करती है ।”

परन्तु मनोवैज्ञानिक विश्लेषक ठीक ही कहता है कि मानव जाति गणनातीत है । क्योंकि जैसे ही मैंने अपने मित्र की धारणा का खण्डन करने के लिए इस पत्र का उद्घरण दिया, उसकी आँखें आनन्द से नाचने लगीं । वह विजयोल्लास से चीख पड़ा, “मैं हृदय से सहमत हूँ, क्योंकि मैं इसीलिए गुरुदेव की पूजा करता हूँ, वे जान जायेंगे कि मुझे पर कैसे क्रिया करनी चाहिये । तब मुझे व्यक्तिगत प्रयास पर क्यों निर्भर रहना चाहिये जब मैं समर्पण द्वारा अधिक शीघ्रता से चीजें करवा सकता हूँ ? क्योंकि मैं उसीके लिए आया हूँ, भागवत शक्ति निश्चित रूप से श्रीअरविन्द के माध्यम से कार्य करेगी और मुझे रूपान्तरित करेगी ।” किंकर्तव्यविमूढ़ सा महसूस करके, यदि पराजित नहीं, मैंने गुरुदेव से पुनः अपील की कि वे हम सबको सुनिश्चित रूप से मार्गदर्शित करें और आकाश में लटकते रहने न दें । इस पर उन्होंने मुझे लिखा : “साधना की प्रारम्भिक अवधि में — और प्रारम्भिक अवधि से मेरा तात्पर्य अल्प भाग नहीं है — प्रयास अपरिहार्य है । समर्पण निस्सन्देह आवश्यक है — परन्तु समर्पण एक दिन में करने की चीज नहीं है । मनके अपने कुछ विचार होते हैं और वह उनसे चिपका रहता है — मानव प्राण समर्पण का विरोध करता है, क्योंकि जिसे यह समर्पण कहता है वह प्रारम्भिक चरणों में मांग के साथ सन्देहात्मक आत्मदान होता है — भौतिक चेतना पाषाणवत् होती है और जिसे यह समर्पण कहता है वह तमस से अधिक कुछ नहीं होता । केवल चैत्य ही जानता है कि समर्पण कैसे करना चाहिये और चैत्य सामान्यतः प्रारम्भ में अत्यधिक आवृत रहता है । जब चैत्य जाग्रत हो जाता है तब यह सम्पूर्ण सत्ता का अचानक सच्चा समर्पण ला सकता है क्योंकि शेष सब की कठिनाई को तब शीघ्रता से निपटा दिया जाता है । परन्तु तब तक प्रयास अपरिहार्य है । अथवा प्रयास तब तक आवश्यक है जब तक सत्ता में ऊपर से शक्ति उमड़ती हुई न आ जाये और साधना का अधिग्रहण न कर ले । व्यक्ति के लिए वही अधिक से अधिक साधना करे और व्यक्तिगत प्रयास पर कम से कम छोड़े । परन्तु तब भी, प्रयास नहीं तो कम से कम अभीप्सा तथा सतर्कता तब तक आवश्यक है जब तक मन, संकल्प, प्राण तथा शरीर पर भागवत शक्ति का अधिकार पूर्ण रूप से न हो जाये ।” परन्तु जिस व्यक्ति ने योग का अभ्यास नहीं किया है वह शायद ही इस बात को समझ पायेगा जो गुरुदेव ने सुझाव दिया है कि प्रयास तथा समर्पण एक दूसरे पर निर्भर करते हैं ।...

... अन्ततः अपनी समस्या पर बल देने के लिए मैंने गुरुदेव के सामने यह प्रस्ताव रखा कि क्या मैं भोजन के बिना रह सकता हूँ । मैं समझता हूँ कि मेरा तात्पर्य आधा ही था यद्यपि इस सम्भावना पर मैं भयभीत हो जाता क्योंकि मैं हमेशा

पूरी तरह सामान्य व्यक्ति रहा हूँ जिसे कभी उपवास का विचार पुष्टिकारक नहीं लगा । मैंने तर्क दिया, “गुरु, मैं इस बात को स्वीकार नहीं कर पा रहा हूँ कि अपना अहं आपके प्रभुत्व को अर्पित कर दूँ । क्योंकि मैं भगवान की ओर से एक गंभीर प्रत्युत्तर के बिना जीवन को निरर्थक पाता हूँ और अन्त में, क्योंकि मुझे लगता है, मैं फिर से कहता हूँ, कि मैं सच्चाई के साथ यह चाहता हूँ कि आप मुझे ऐसी शक्ति दें, जिसकी मुझे अत्यन्त आवश्यकता है, कि मैं अपने अहंकार को मना सकूँ या राजी कर सकूँ । कृपया मुझे यह बतायें कि क्या आप मेरे उपवास को अनुमोदित करेंगे ? मैंने कुछ योगियों के जीवन वृत्त में पढ़ा है कि उन्होंने अन्तिम साधन के रूप में इसका प्रयास किया और सफलता प्राप्त की ।”

इसके उत्तर में उन्होंने एक सुकुमारतम पत्र लिखा : “दिलीप, मैं यह सब तुम्हें योग के बारे में तुम्हारे पूर्व विचार के उत्तर में लिख चुका हूँ कि यदि व्यक्ति भगवान को चाहता है तब भगवान स्वयं हृदय का शुद्धीकरण अपने हाथ में ले लेंगे तथा साधना का विकास करेंगे और आवश्यक अनुभूतियाँ प्रदान करेंगे । मेरा कहने का तात्पर्य था कि इस प्रकार हो सकता है और होता है यदि व्यक्ति का भगवान पर भरोसा और विश्वास हो तथा समर्पण का सच्चा संकल्प हो । इस तरह के कार्य की यह मांग होती है कि व्यक्ति अपने को भगवान के हाथों में सौंप दे न कि केवल अपने प्रयासों पर विश्वास करे । और इसमें यह बात निहित है कि व्यक्ति भगवान पर भरोसा और विश्वास रखे तथा क्रमिक आत्मदान यानी धीरे-धीरे अपने को अधिक से अधिक भगवान के प्रति समर्पित करे । वास्तव में यही साधना का सिद्धान्त है जिसका पालन मैंने स्वयं किया है और मेरी दृष्टि में यह योग का केन्द्रीय अंग है । मैं समझता हूँ कि रामकृष्ण का बिल्ली के बच्चे की विधि से यही तात्पर्य था । परन्तु सभी इसका पालन तुरन्त नहीं कर सकते । वहाँ तक पहुंचने में समय लगता है — जब मन तथा प्राण शान्त हो जाते हैं तब यह सबसे अधिक विकसित होता है ।

“समर्पण से मेरा तात्पर्य यही आन्तरिक मानसिक तथा प्राणिक समर्पण था । निस्सन्देह बाह्य समर्पण भी होता है : वह सब कुछ दे देना जो साधना की भावना या आवश्यकता के प्रतिकूल पाया जाये, भेंट चढ़ा देना, भगवान के मार्गदर्शन के प्रति आज्ञाकारिता चाहे सीधा यदि व्यक्ति उस चरण तक विकास कर चुका हो अथवा चैत्य के माध्यम से अथवा गुरु के मार्गदर्शन में ।”

उस रात मैंने अपने स्वप्न में गुरुदेव का कान्तिमय रूप देखा । उन्होंने आशीर्वाद दिया और कहा, “कल से तुम मछली का त्याग करने में समर्थ हो जाओगे ।” वे अदृश्य हो गये । मैं आनन्दातिरेक के साथ जाग पड़ा । दूसरे दिन से मैंने मछली खाना न केवल छोड़ दिया बल्कि उसकी जरा भी ललक महसूस नहीं की जैसे मुझमें पहले

हुआ करती थी । निस्सन्देह कभी-कभी तब से मछली खा चुका हूँ परन्तु पहले के स्वाद के साथ या उस चेतना में नहीं जब मैं स्वाद का दास था । शायद छः महीनों में एक या दो बार मैंने मछली चखी है परन्तु मुझे सबसे अधिक विश्वसनीय यह लगा कि उस महत्वपूर्ण रात्रि के बाद मैंने मछली खाने के लिए थोड़ा भी तरसना अनुभव नहीं किया । यह भी जोड़ दूँ कि पिछले वर्ष मैं अपने दीर्घकालिक संगीत पर्यटन के दौरान धनी पेटू और चटोरों के साथ खाने की मेज पर दिन पर दिन बैठता रहा परन्तु उनके दबाव के बावजूद मछली को स्पर्श तक नहीं किया । परन्तु योग-शक्ति (जो ऐसे असन्दिग्ध परिणाम ला सकती है तथा अभीप्सु की बाहरी प्रकृति में ऐसा परिवर्तन ला सकती है) हममें से अधिकांश लोगों के लिए अदृश्य है जबकि वास्तव में यह हमारी सत्ता तथा चेतना में खमीर के समान काम करती है फिर भी, प्रायः हमलोगों को इसकी कार्यप्रणाली को व्यावहारिक स्वीकार करना कठिन महसूस होता है । ऐसा नहीं है कि मैं विश्वास करना नहीं चाहता था — कभी-कभी मैं वास्तव में विश्वास करना चाहता था — फिर भी प्रायः अधिक ही यह स्वीकार करना आसान नहीं होता था जिसे वे जोर देकर सौ फीसदी प्रामाणिक तथा सत्यापनीय कहते थे । तथा किस स्वराघात से मुझे प्रबोधित करते, — “इसी श्रद्धा को विकसित करने की आवश्यकता है” । एक बार तीस के दशक में उन्होंने मुझे लिखा, “एक ऐसा विश्वास जो तर्क तथा सामान्य बुद्धि के साथ सुसंगत हो — कि यदि भगवान है तथा तुम्हें इस पथ पर चलने के लिए बुलाया है, जैसा कि यह स्पष्ट है, तब इसके पीछे भागवत मार्गदर्शन अवश्य होगा और यह कि सभी कठिनाइयों के बावजूद तुम लक्ष्य को प्राप्त कर लोगे । विरोधी आवाजों को, जो विफलता का सुझाव देती हैं, कभी न सुनो । अथवा अधीर प्राणिक जल्दीबाजी के स्वरों पर जो उन्हीं की प्रतिध्वनि होते हैं, कभी ध्यान न दो । यह विश्वास न करो कि क्योंकि कठिनाइयाँ बड़ी हैं इसलिए सफलता नहीं मिलेगी अथवा इसलिए कि अब तक भगवान प्रकट नहीं हुए, वे अब कभी प्रकट नहीं होंगे । बल्कि अपनी मानसिक स्थिति ऐसी बनाओ जैसी एक महान और कठिन लक्ष्य निर्धारित करनेवाला हर व्यक्ति बनाता है : “मैं तब तक प्रयास करता जाऊँगा जब तक मैं सफल नहीं हो जाता और सभी कठिनाइयों के बावजूद मैं निश्चय ही सफलता प्राप्त करूँगा । इसमें भगवान में विश्वास करनेवाला यह भी जोड़ देता है : भगवान है, वह मौजूद है और क्योंकि वह है, मेरा उनके पीछे अनुगमन कभी विफल नहीं हो सकता है । जब तक मैं उसे प्राप्त नहीं कर लेता, मैं हर कठिनाई का सामना करूँगा । ”

जब उन्होंने मुझे यह लिखा था तब वे निस्सन्देह यह जानते थे कि मेरे जैसे अधीर अभीप्सु के लिए “भौतिक परिणाम लाने वाली अदृश्य शक्ति” में अटल श्रद्धा रखना इतना आसान नहीं है जो हर समय, हमेशा द्रुत परिणाम पर नजर टिकाये

रखता है। इसलिए वे मेरी अनुभूति-शून्यता सम्बन्धी अपने सम्पूर्ण पूर्व-अनुभव का जोर लगा कर घेराव करते रहे जिसका अन्त में एक और दृष्टान्त मैं देना चाहूँगा।

सन्देह पर जब उन्होंने मुझे अपने प्रसिद्ध पत्र में लिखा (“एमंग द ग्रेट” में पूर्ण उद्धृत), उसके बाद आश्रम में एक साधक के साथ मेरी एक शाब्दिक झड़प हो गई। इस दृष्टान्त में ऐसा लगा जैसे उसने कुछ समझा है किन्तु मैंने समझा कि वह ठीक से अपनी बात व्यक्त नहीं कर पा रहा है जब उसने यह दावा किया कि “श्रीअरविन्द की शक्ति को ‘अदृश्य’ नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसका प्रभाव अनेक जिज्ञासुओं की बाहरी प्रकृति में भी स्पष्ट परिवर्तन के रूप में देखा गया है। इसलिए मैंने गुरुदेव को लिखा और इस कुछ अस्पष्ट-से बिन्दु पर प्रकाश डालने का अनुरोध किया : क्या शक्ति का तात्पर्य व्यावहारिक कार्य से था ? क्या मेरे मित्र द्वारा बलपूर्वक कहे गये परिवर्तन अकाट्य थे ? — और इसी प्रकार !

इसके उत्तर में उन्होंने लिखा : “आन्तरिक और बाह्य दोनों तरह के स्पर्शनीय परिणाम लानेवाली अदृश्य शक्ति ही यौगिक चेतना का सम्पूर्ण अर्थ है। बिना किसी ठोस परिणाम के केवल शक्ति की भावना लानेवाले योग के बारे में तुम्हारा प्रश्न सचमुच बहुत विचित्र था। इस प्रकार के निरर्थक निर्मूल भ्रम से कौन सन्तुष्ट होगा और इसे शक्ति कहेगा ? यदि हमलोगों को आन्तरिक शक्ति की ऐसी हजारों अनुभूतियाँ न होतीं जो मन को बदल दे, इसकी शक्तियों का विकास करे, नई शक्तियाँ प्रदान करे, ज्ञान की नई शृंखलाएं लाये, प्राणिक गतियों का नियन्त्रण करे, चरित्र को बदल दे, मनुष्यों और चीजों को प्रभावित करे, शरीर की अवस्थाओं तथा कार्य प्रणाली पर अधिकार करे, अन्य शक्तियों पर एक ठोस गत्यात्मक शक्ति के समान कार्य करे, घटनाओं में सुधार लाये, आदि आदि तब हमलोग इस तरह बात नहीं करते। इसके अतिरिक्त, यह शक्ति न केवल अपने परिणामों में बल्कि अपनी गतिविधियों में भी स्पर्शनीय तथा ठोस है। जब मैं किसी शक्ति या बल को महसूस करने की बात कहता हूँ तब मेरा तात्पर्य केवल इसके अस्पष्ट बोध या भावना से नहीं होता वरन इसके ठोस अनुभव से होता है और इसे किसी भी कार्य के लिए परिचालित किया जा सकता है, इसकी गतिविधियों को देखा जा सकता है, इसकी मात्रा तथा तीव्रता के प्रति सचेतन हुआ जा सकता है और इसी प्रकार अन्य विरोधी शक्तियों के साथ भी ऐसा हो सकता है। ये सब चीजें योग के विकास के द्वारा सम्भव और सामान्य होते हैं।”

परिणाम प्राप्त करने की मेरी अपनी क्षमता के बारे में मेरे सुस्पष्ट प्रश्न के उत्तर में उन्होंने अन्त में लिखा : “ऐसा नहीं है कि तुम परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ हो, क्योंकि अनेक बार तुम परिणाम प्राप्त करने वाले थे। परन्तु तुम्हारे बाह्य मन ने

हमेशा हस्तक्षेप किया — प्रश्न पर प्रश्न करना, सन्देह करना, अधिक बाह्य चीजों की कामना करना, गति को और आगे बढ़ने देने के लिए प्रतीक्षा नहीं करना, आन्तरिक को बाहर आने और उसे ठोस रूप ग्रहण करने के लिए धैर्य न रखना । इसीलिए मैं सन्देह की इस पूजा पर आपत्ति करता हूँ । ऐसा भी नहीं है कि मुझे सन्देह नहीं होता था । मैं स्वयं किसी से भी, जो तुम सोच नहीं सकते, अधिक भयानक था — परन्तु मैंने उन्हें अपनी अनुभूति के विकास में हस्तक्षेप करने नहीं दिया : मैंने उसे तब तक आने दिया जब तक उसने इतना पर्याप्त रूप ग्रहण नहीं कर लिया कि मैं जान सकूँ यह क्या है और यह मुझे क्या प्रदान कर सकता है ।”

मुझमें “परिणाम प्राप्त होनेवाला था” के विषय में जो उन्होंने चर्चा की है, वह अनुभव उन दिनों निरन्तर हुआ करता था : चेतना का गहराई में जाना उस बिन्दु तक मानों मैं सीमा रेखा पार करनेवाला हूँ । तब मैं अपनी अधीरता में अपने सक्रिय मन से इसे तुरन्त कर लेना चाहता था और अनुभूति से वंचित हो जाता था । दूसरे शब्दों में मैं अपने ध्यान में कुछ अधिक ही प्रयास करने लग जाता था और इस प्रकार निष्क्रियता की शांति के अभाव में अपने कठिन परिश्रम के समुचित फल से हाथ धो बैठता था । श्रीमाँ ने मुझे साफ-साफ कहा कि इसने यानी मेरी अधीरता ने मेरी चेतना में तनाव उत्पन्न कर दिया और इसीलिए अनुभूति के द्वार पर पहुँच कर भी हार गया । इससे निराश होकर मैंने सारा दोष उन्हें देते हुए गुरुदेव को एक लम्बे पत्र में यह लिखा कि उन्होंने मुझे इतने दिनों तक अन्धेरे में क्यों रखा जबकि मैं हमेशा गलत मार्ग पर जा रहा था । “किन्तु यह उचित नहीं है गुरु”, मैंने निराशा की पराकाष्ठा से लिखा, “ आप का योग, जो आपने हमलोगों को दिया है, लगता है अतिमानसिक सत्ताओं के लिए विकसित किया गया है । परन्तु तब इससे हमलोगों को, बेकार मरणशील मानवों को भला क्या लाभ जिनमें दो में से केवल एक ही मनोवृत्ति अपनाने की सामर्थ्य है — प्रयास या निष्क्रियता । इसलिए मैंने अति श्रम किया, परन्तु हाय ! केवल यह सुनने के लिए कि अति श्रम या तनाव से कुछ मदद नहीं मिलती । परन्तु जब अमुक व्यक्ति ने लिखा कि वह कुछ श्रम करना नहीं चाहता तब आपने उसके आलस्य का उपहास किया और श्रीमाँ ने उसे कहा कि भगवान उसी की मदद करते हैं जो स्वयं अपनी मदद करता है ।...”

उन्होंने “प्राणिक अतिश्रम या तनाव और खींचना तथा सहज चैत्य उद्घाटन” के बीच अन्तर पर बल देते हुए लिखा, “ऐसा नहीं है कि खींचना, श्रम करना तथा तनाव से कुछ नहीं होता । अन्त में वे कुछ परिणाम लाते हैं, परन्तु कठिनाई, विलम्ब, संघर्ष, शक्ति के प्रबल उथल-पुथल से । श्रीरामकृष्ण ने स्वयं खींचने तथा श्रम करने से आरम्भ किया था और फल प्राप्त किया था परन्तु भयानक विध्वंस के

मूल्य पर । बाद में उन्होंने, जब भी फल प्राप्त करना चाहा, शान्त चैत्य मार्ग अपनाया और अल्पतम समय में आराम से इसे प्राप्त किया । तुम कहते हो कि यह मार्ग तुम्हारे लिए या तुम्हारे जैसों के लिए अत्यन्त कठिन है ।

“... यह एक विचित्र भ्रान्त धारणा है, क्योंकि, इसके विपरीत, यह सरलतम, सबसे अधिक सीधा मार्ग है और कोई भी इसे कर सकता है यदि वह अपने मन और प्राण को स्थिर रखे । यहाँ तक कि वे भी कर सकते हैं जो तुमसे दसवां भाग भी क्षमता रखते हैं । यह तनाव, अतिश्रम, कठिन प्रयास से, जिसमें तपस्या की बहुत बड़ी शक्ति की आवश्यकता होती है, उलटा मार्ग है । जहाँ तक श्रीमाँ का तथा मेरा सम्बन्ध है, हमलोगों को कठिनाइयों के पहाड़ों को पार करने के लिए सभी मार्गों का परीक्षण करना पड़ा, सभी विधियों का पालन करना पड़ा । हमलोगों को तुमसे या आश्रम के अन्दर या बाहर किसी अन्य व्यक्ति से कहीं अधिक भारी बोझ उठानी पड़ी, कहीं अधिक कठिन स्थितियों से गुजरना पड़ा, कितने संग्राम करने पड़े, जख्म सहने पड़े, कितने अभेद्य दलदलों, रेगिस्तानों तथा जंगलों से होकर गुजरना पड़ा, विरोधी जनसमूहों को जीतना पड़ा — एक ऐसा कार्य, जैसा, मुझे पूरा विश्वास है कि हमलोगों से पहले किसी अन्य को नहीं करना पड़ा । क्योंकि हमलोगों के कार्य में मार्ग के नेता को न केवल भगवान को नीचे लाना, उनका प्रतिनिधित्व करना या उनका मूर्त रूप धारण करना पड़ता है बल्कि मानवता में स्थित आरोही तत्व का भी प्रतिनिधित्व करना पड़ता है तथा मात्र क्रीड़ा के रूप में नहीं बल्कि कठोर गंभीरता के साथ समस्त विरोध, कठिनाई, रुकावट, घबराहट का अनुभव करना पड़ता है । तब कहीं केवल धीरे-धीरे परिश्रम की जीत की इस पथ पर संभावना दिखाई पड़ती है ।”

और अन्त में कितनी चिन्ता तथा कोमल स्नेह भाव से उन्होंने मुझ जैसे अड़ियल को सान्त्वना दी ! —

“परन्तु यह आवश्यक नहीं है और न तो इतना सह्य है कि दूसरे लोग भी इन सब अनुभवों को फिर से दुहरायें । क्योंकि हमलोगों को सम्पूर्ण अनुभव है इसीलिए हमलोग दूसरों को अधिक सीधा और आसान मार्ग दिखा सकते हैं — यदि वे केवल इससे सहमत हों । क्योंकि हमलोगों ने यह अनुभव बहुत भारी मूल्य देकर प्राप्त किया है इसलिए तुम्हें तथा दूसरों को आग्रह के साथ कह सकते हैं : चैत्य की मनोवृत्ति ग्रहण करो, सूर्यालोकित सीधे पथ का अनुगमन करो जिसमें भगवान प्रकट या गुप्त रूप से तुम्हें ऊपर उठाये रखते हैं — यदि गुप्त रूप से तब वे उचित समय पर तुम्हारे सामने प्रकट होंगे — कठिन, बाधाओं से भरी, टेढ़ी-मेढ़ी यात्रा के लिए आग्रह न करो ।”

मैं नहीं जानता कि किसी अन्य गुरु ने अतीत में ऐसी भाषा में जो इतनी सच्चाई

से स्पन्दित हो — ऐसा लिखा हो जैसा कि मादाम गैब्रियेला ने श्रीअरविन्द के प्रति अपनी श्रद्धांजलि में कहा है — “अमल सुन्दर हीरे के समान दुर्लभ चमत्कारिक प्रतिपादन की प्रस्तुति जिसमें आम आदमी को भी चकराने का कोई खतरा न हो ।” और कितने अकाट्य तर्क के साथ आगे कहती हैं — “छः विदेशी भाषाओं ने पुदुच्चेरी के गुरु को दिया है उपहार समन्वय का, स्पष्टता का जो आडम्बर से मुक्त है और मोहकता का जिसमें जादू का-सा असर है... हमारे समक्ष है उनका ऐसा गद्य जो जर्मन श्रेण्यवादी (क्लासिसिस्ट) तथा यूरोपीय गुह्यवाद के शीर्ष महान एकहट्टे के समकक्ष है ।” इसलिए वे आनन्द विभोर होकर कहती हैं, “यह सचमुच हमलोगों के लिए बहुत बड़ी खबर है कि दुनिया में एक ऐसी भी जगह है जहाँ संस्कृति एक मनुष्य में अलौकिक जीवन के साथ एक उत्कृष्ट साहित्यिक शैली को संयुक्त कर और इस प्रकार उनके सुन्दर अनुशासित तथा क्लासिकी गद्य को प्रयुक्त करते हुए उसे आत्मा की परिचारिका बनाकर गरिमा के अपने स्वर तक पहुँच गई है ।” उसने बिलकुल सच कहा है क्योंकि श्रीअरविन्द गुरु के रूप में मेरे जैसे संशयशील व्यक्ति के लिए भी इतने विश्वसनीय हैं कि जब हमें उनकी आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि अपारदर्शी लगती है तब भी वे हमें हमारी संदेहशीलता के बावजूद एक आंशिक चैत्य पारदर्शिता की ओर अपने इस स्फटिकीय अनुभव तथा अभिव्यक्ति के अप्रतिरोध्य ‘उपहार’ द्वारा गतिशील बना देते हैं जो हम तक वैसे समय पर पहुँच जाता है जब हम “चेतनाशून्य बनाने वाले भौतिकवाद” से घिरे रहते हैं । जब मैंने श्रीअरविन्द के देहनिवर्तन के पश्चात् पिछले वर्ष १९५० में ५ दिसम्बर को उपर्युक्त श्रद्धांजलि पढ़ी तब मैं एक महत् विषाद से आक्रान्त हो गया । हाँ, मैं अपने आप से बोल पड़ा, उन्होंने सच कहा । शायद उनके शिष्यों में भी जिन पर उन्होंने इतना स्नेह बरसाया सन्देहशीलता की यही कठोर परत उनके भौतिक निवर्तन का आंशिक कारण रहा हो । और वह कैसा स्नेह था ! जब मैंने यह पढ़ा कि दुःख-दर्द भरी इस धरती को रूपान्तरित करने की ज्वलन्त अभीप्सा से उनका हृदय भरा था और इसी के लिए उन्होंने अपने शरीर में ऊपर की ज्योति उतारी थी परन्तु वे उसे पूर्ण रूप से इसलिए नहीं ला पाये थे, क्योंकि हम संभावित भोगाधिकारी आग्रहपूर्वक इस सम्भावना को नकारते रहे और पूर्ण रूप से यह विश्वास नहीं कर सके कि वे वास्तव में हम सब को, पूर्ण पार्थिव चेतना को एक उच्चतर और विशालतर परिपूर्णता की ओर ले जाने के लिए आये थे, तब मैं हर्ष और विषाद दोनों से आक्रान्त हो गया । हमलोग केवल, आह ! अपने आप से यही प्रश्न करते रहे कि वे क्या सचमुच गंभीर थे जब उन्होंने अपने धर्मसार सावित्री में यह घोषणा की कि परम अभिव्यक्ति की खोज अदृश्य स्वर्ग में नहीं बल्कि यहाँ नीचे पृथ्वी पर की जानी चाहिये, क्योंकि —

“पृथ्वी है चयनित स्थल सर्वशक्तिशाली आत्माओं का
पृथ्वी है युद्ध क्षेत्र वीरोचित जीवट का
वह भट्टी जहाँ प्रधान राजगीर अपने कार्यों को देता है रूप ।”
और अन्ततः जब परम ने सावित्री को “पार्थिव जाति” को अपनी अपूर्ण ज्योति
पर छोड़ देने के लिए आमंत्रित किया क्योंकि “समस्त किया जायेगा काल की दीर्घ
प्रक्रिया में” तब उसने यह उत्तर दिया कि उन्होंने कभी स्वार्थी मुक्ति की कामना नहीं
की ।

“विश्व और मानव को है बचाना धर्म मेरा
तुम्हारे आकर्षक स्वर का सम्मोहन भी
हे आनन्दमय अधिदेव, कर सकता नहीं अधिकृत, प्रलुब्ध
में अधिक सुखद जगतों के लिए पृथ्वी का कर सकती नहीं बलिदान” ।
भागवत में वर्णित (७.९.४४) महाभक्त प्रह्लाद की प्रार्थना की अनायास
समृति हो जाती है —

प्रायः हे प्रभु, एकांतवासी निर्जन शांति में रहते पृथक्
करते हैं केवल अभीप्सा अपनी मुक्ति की
जीवन की अराजकता को जाते हैं भूल
विशाल विषाद से सिकत पृथ्वी से अनजान
कौन करेगा इसे कष्ट से मुक्त
यदि तुम्हारी करुणा खड़ी रही पृथक् ।
में मुक्ति की करता नहीं चिन्ता
यदि अन्य सब दुःख और विपत्ति हों झेल रहे

Sri Aurobindo came to me p.87-105 – दिलीप कुमार राय

उसकी विफलता है नहीं विफलता जिसका मार्गदर्शन करते भगवान;
सब परिस्थितियों में मन्द रहस्यमय अभियान चलता है निरन्तर;
एक निर्विकार शक्ति ने इस अनित्य विश्व की, की है रचना;
एक आत्म-परिपूरक लोकातीत्व मानव का पथ करता है पार;
आत्मा का वाहक अपने पथ पर,
यह जानता है अपने कदम, इसका मार्ग है अपरिहार्य,
तब कैसे हो जायेगा अन्त व्यर्थ जब मार्गदर्शक हैं भगवान ?

सावित्री, पृ.३३९

Evening Talks

AB Purani

गुरु-गृहवास

गुरु-गृह में निवास एक अत्यन्त प्राचीन भारतीय आदर्श है जिसका जिज्ञासुओं द्वारा युगों से पालन किया जाता रहा है। अरण्यक — वन निकुंजों में दिये गये प्राचीन शिक्षण — शायद इस विधि के प्राचीनतम अभिलेख हैं। शब्द के आधुनिक अर्थ में शिक्षा प्राप्त करने के लिए लोग गुरु के साथ निवास करने नहीं जाते थे क्योंकि गुरु 'शिक्षक' नहीं होता। गुरु वह व्यक्ति होता है जो 'प्रबुद्ध' है, जो द्रष्टा है, ऋषि है, वह व्यक्ति जिसे सत्य की दृष्टि प्राप्त है और जिसने सत्य का अपने जीवन में आचरण किया है। इस प्रकार, उसे मानव जीवन के लक्ष्य का ज्ञान रहता है और सत्य के आचरण द्वारा उसने जीवन में सच्चे मूल्यों को सीखा है। वह जिज्ञासु को दोनों का ज्ञान दे सकता है। प्राचीन काल में जिज्ञासु गुरु के पास अनेक प्रश्नों, कठिनाइयों तथा सन्देहों के साथ जाया करते थे परन्तु सच्चाई तथा तत्परता के साथ जाते थे।

मास्टर, गुरु अपने प्रबोधक उत्तरों से उलझे मानव मन को शान्त कर देता था, शायद अपनी नीरव चेतना द्वारा कुछ और अधिक भी, जिससे वह सत्य की सिद्धि के पथ का निर्बाध अनुगमन कर सके। वे प्राचीन वार्ताएं युगों के बाद आज भी मानव मन के प्रश्नों के उत्तर देती हैं। वे उचित ही — जैसा कि प्रत्येक प्राचीन वस्तु के साथ है — एक विशिष्ट पावनता अर्जित कर चुकी हैं। परन्तु कभी-कभी वह श्रद्धा ही मनुष्यों को वर्तमान के समुचित मूल्यांकन से तथा वर्तमान में रहने से रोकती है। यह तब होता है जब मन आत्मन की खोज करने के बदले रूप पर दृष्टि रखता है।

(पृष्ठ-७)

श्रीअरविन्द : परन्तु भारत में धारणा यह है कि योग अभ्यास का कार्य निरन्तर व्यवहार में लाने का कार्य है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए कैसे साधना कर सकता है ? अन्य योगों में जो भी धारणा रही हो, हमारे योग में, हर हालत में, गुरु पर यह दायित्व छोड़ देना अपने लक्ष्य से ही हट जाना होगा। प्रत्येक को स्वयं अपना मार्ग बनाना होगा। गुरु अधिक से अधिक अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। परन्तु अस्वीकृति तथा रूपान्तरण स्वयं साधक द्वारा किया जाना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर उसे सहायता मिल सकती है। और जब गुरु अपनी शक्ति प्रदान करता है तब व्यक्ति इसे रखने में असमर्थ हो सकता है अथवा उसे निरर्थक रूप से अपव्यय कर सकता है। प्रत्येक को अपना मार्ग स्वयं बनाना होगा।

एक नये आगन्तुक को परामर्श दिया गया कि वह अपने उसी वैष्णव गुरु से मार्ग दर्शन लेता रहे, उसे छोड़े नहीं जिससे उसे अस्थायी शान्ति की अनुभूति हुई । अपने गुरु के प्रति उसकी आपत्ति थी :

१. कि वे वैष्णव थे ।

२. कि वे प्रायः बोलते और समझाते नहीं थे ।

३. कि वे देखने में प्रभावशाली नहीं थे । यह बात श्रीअरविन्द को सूचित की गई ।

श्रीअरविन्द : ये सब, यदि सच हैं, तब ये अयोग्यता नहीं बल्कि इसके विपरीत, अनुशंसा हैं । यह तथ्य कि वह नीरवता में अनुभूति प्रदान कर सकता है, एक महान योगी की पहचान है । वह आवश्यक होने पर ही बोलता है, अन्यथा नहीं — यह भी एक उत्तम चिह्न है । वह वैष्णव हो या शैव, इसका कोई महत्व नहीं है, वह धर्म है । किन्तु यह व्यक्ति उससे धर्म नहीं चाहता — वह आध्यात्मिक विकास चाहता है । आध्यात्मिक विकास का धर्म से क्या वास्ता ?

पृ. ३२७-३२८

प्रभावशाली व्यक्तित्व के बारे में, ऐसे अधिकांश प्रभावशाली व्यक्ति प्राणिक जगत से इसे प्राप्त करते हैं और वे धोखेबाज निकलते हैं ।

शिष्य : तब क्या गुरु का व्यक्तिगत पक्ष जैसा कुछ नहीं होता । मैं हमेशा सोचता रहता हूँ कि गुरु का एक व्यक्तिगत पक्ष होता है, साथ ही निर्वैयक्तिक भी । जो अपने को गुरु के निर्वैयक्तिक पक्ष के प्रति उद्घाटित करता है वह सत्य को प्राप्त करता है, परन्तु जब तक वैयक्तिक पक्ष के प्रति समर्पण न हो तब तक यह पूर्ण नहीं होता । गुरु का यह व्यक्तिगत पक्ष भागवत कृपा का प्रयोग कर सकता है ।

श्रीअरविन्द : यह गुरु पर निर्भर करता है । यदि वह मानव गुरु है तब उसकी प्राणिक या मानसिक प्राथमिकताएं भाग ले सकती हैं और प्रायः ही कृपा के प्रयोजन को मिथ्या बना सकती हैं । जितना कम वे हस्तक्षेप करें उतना ही अच्छा है । व्यक्तिगत तथा निर्वैयक्तिक से तुम्हारा तात्पर्य क्या है ? क्या तुम यह कहना चाहते हो कि यदि तुम प्रतिदिन काफी मात्रा में मुझे फल आदि देते, तब मेरी ओर से ढेर सारी आध्यात्मिक चीजें तुम्हें मिलतीं ? (हँसी)

पृ. ३४९

दिलीप का पत्र कृष्णप्रेम के पत्र के साथ यह प्रश्न करते हुए कि जब भी कभी साधक व्यक्तिगत प्रयास करता है तब क्या यह कहा जा सकता है कि यह अहंकार को सन्तुष्ट करने के लिए होता है ।

श्रीअरविन्द : नहीं, यह भगवान के समक्ष इसे गौण रखने के लिए हो सकता है । यदि

यह प्रयास शक्ति अर्जित करने या कुछ अन्य आवेग को सन्तुष्ट करने के लिए हो तब वह व्यक्तिगत प्रयास अहंकारात्मक मूल से आ सकता है ।

शिष्य : क्या कोई व्यक्ति ऐसे गुरु को समर्पण कर सकता है जिसकी बाह्य प्रकृति अपूर्ण है ?

श्रीअरविन्द : इसका मानवीय मानदण्ड के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है — नैतिक अथवा मानसिक । प्रायः अहंकार ही कहता है कि “इस व्यक्ति में यह दोष है, मैं उसे समर्पण नहीं करूँगा ।”

शिष्य : परन्तु किसी को गुरु के रूप में स्वीकार करने के लिए क्या उस व्यक्ति में भगवान का बोध अथवा भावना अथवा अनुभव की आवश्यकता नहीं पड़ती ?

श्रीअरविन्द : आवश्यक नहीं है । यह गुरु का भगवान में केवल विश्वास हो सकता है । उस तरह यह तर्क दिया जा सकता है कि भगवान अपूर्ण हैं क्योंकि इस जगत की बाहरी कार्य प्रणाली अपूर्णता, अज्ञान, दुःख से भरी पड़ी है । ये सब चीजें महत्व नहीं रखती । प्रश्न यह है कि क्या गुरु की दिव्यता शिष्य के अन्दर भगवान को जाग्रत कर सकती है ।

विवेकानन्द रामकृष्ण की कमजोरियों को जानते थे और उनका मन अत्यन्त अज्ञेयवादी था । इसलिए उन्हें अनेक वर्ष लगे और वे रामकृष्ण को स्वीकार करने से पूर्व अपने आप से संघर्ष कर रहे थे ।

पृ.७६६-७६७

नित्य छद्मवेशी वह करती है प्रतीक्षा जिज्ञासु आत्मा की;
सर्वोच्च अलभ्य शिखरों की करती जो निगरानी,
अदृष्ट पथों के पथिक की मार्गदर्शिका,
वह एकाकी के आडम्बरहीन प्रवेशमार्ग की करती रक्षा ।
सावित्री, पृ.२९५

मंत्र और गुरु

[सत्प्रेम ११ मई का एक पूर्व वार्तालाप पढ़ कर श्रीमाँ को सुनाता है जिसमें श्रीमाँ ने कहा कि सच्चा मंत्र वह नहीं है जो तुम्हें गुरु द्वारा दिया जाता है बल्कि जो सहजता से स्वयं अन्दर से तुम्हारी आत्मा की पुकार के समान प्रकट होता है।]

किंतु यह कैसे हो सकता है, यदि मंत्र में अपने आप अनुभूति की शक्ति रहती है तब हमेशा यह क्यों कहा जाता है कि जब तक तुम्हें अपने गुरु द्वारा मंत्र नहीं दिया गया हो तब तक इसमें शक्ति नहीं होती?

श्रीमाँ : यह तब ठीक है जब तुम्हारी अपनी शक्ति नहीं हो, स्वभावतः ! उदाहरण के लिए, यदि कोई मेरे पास आ जाये और कोई एक मंत्र मांगे तब मैं उसे नहीं कहूंगी कि वह अपने अन्दर अपना मंत्र प्राप्त कर ले...

मैंने उस समय जो कहा था वह उस पर लागू होता है जो अपनी आत्मा के सम्पर्क में है। किन्तु जो अपनी आत्मा के साथ सचेतन सम्पर्क में नहीं हैं वे अपना मंत्र नहीं प्राप्त कर सकते—उनका मस्तिष्क शब्दों के लिए ढूँढ़ता रहेगा, किन्तु यह तो कुछ नहीं है। मैंने कहा कि मंत्र अन्दर से निकलना चाहिये—परन्तु उनके लिए कुछ भी नहीं निकलेगा ! उन्हें नहीं प्राप्त होगा, एक बार भी नहीं ! अतः वैसी स्थिति में, गुरु अपनी शक्ति देता है।

हां, किन्तु जब, उदाहरण के लिए, तुम पुस्तक में कोई मंत्र पढ़ते हो, तब यह कहा जाता है कि इसमें कोई शक्ति नहीं है—यह कैसे हो सकता है जब कि उसमें स्पन्दन है?

परन्तु यदि तुम्हारे अन्दर शक्ति है और तुम पुस्तक पढ़ते हो तब तुम्हें शक्ति प्राप्त होगी ! (श्रीमाँ हंसती हैं) जरूरत है महसूस करने तथा सम्पर्क स्थापित करने की योग्यता की।

आखिरकार गुरु क्या करता है? वह सम्पर्क बनाता है (मिलाने का संकेत) वह सिर्फ एक कड़ी है। वह जो शक्ति देता है वह उसकी अपनी शक्ति नहीं होती (वह ऐसा सोचता अवश्य है परन्तु यह सच नहीं है)। वह सिर्फ एक कड़ी है। वह शक्ति के सम्पर्क में तुम्हें ला देता है—वह सम्पर्क जो उसके बिना तुम्हारे पास नहीं होता। परन्तु जिन्हें गुरु की जरूरत नहीं है वे गुरु के बिना भी सम्पर्क बना लेंगे।

यह कुछ ऐसी चीज नहीं है जिसे वह अपनी जेब से निकाल कर तुम्हें दे दे ! ऐसा बिलकुल नहीं है। यह सम्पर्क बनाने की शक्ति है।

*

अन्ततः यह मात्र चेतना का प्रश्न है : लोगों में (सामान्य लोग) ऐसी चेतना होती है जो एक खास बिन्दु (ऐसा बिन्दु जो बहुत दूर नहीं हो) तक ही जा पाती है और उसके परे जो है उनके लिए वह निश्चेतन होता है, (यद्यपि यह चेतना से पूर्ण है) परन्तु उनके लिए इसलिए निश्चेतन होता है क्योंकि वे उसके साथ सम्पर्क नहीं बना सकते। यह ठीक वैसा ही है जब रात्रि में तुम सत्ता की अन्य स्थिति में जाग्रत हो जाते हो, सचेतन हो जाते हो तथा “स्वप्न” देखते हो (जिसे मनुष्य स्वप्न कहते हैं लेकिन उनका तात्पर्य अनुभव से होता है) और फिर सामान्य चेतना में लौट आते हो तब, क्योंकि दोनों चेतनाओं में सम्पर्क नहीं होता, तुम स्वप्न को याद नहीं रख पाते। परन्तु तुम याद रख सकते हो विधिवत विकास के द्वारा, चेतना को विस्तारित करो और दोनों के बीच सम्पर्क बनाओ। और जैसे ही सम्पर्क बन जाता है तब हर चीज याद करने में थोड़ा-सा प्रयास करना पड़ता है। परन्तु चेतना को विस्तारित करना कठिन कार्य है।

मूलतः गुरु की वास्तविक शक्ति है रिक्त स्थानों को भरना, तुम्हें सम्पर्क में लाना : जब तुम उच्चतर लोकों में होते हो तब उच्चतम के साथ सम्पर्क में लाना। अथवा तुम्हारी आत्मा के साथ तुम्हें सम्पर्क में लाना, तुम्हारे भीतर तुम्हारे चैत्य पुरुष के साथ अथवा परम के साथ तुम्हें सम्पर्क में लाना — किन्तु यह बहुत लोग नहीं कर सकते।

— मदर्स एजेण्डा, वॉल्यूम ४, पृ. २१६-२१८

गुह्यविद्या और गुरु

[सत्रमे ११ जुलाई १९५६ की प्राणिक लोक पर श्रीमाँ की वार्ता पढ़कर सुनाता है। बुलेटिन में इसे प्रकाशित किये जाने से श्रीमाँ इनकार करती हैं।]

प्रारम्भिक रूप में मैंने यह कहा था कि प्राण छोटी-छोटी हस्तियों, छोटे रूपायनों, मृत व्यक्तियों के अवशेषों से भरा होता है। परन्तु प्राण का एक सम्पूर्ण जगत् है जिसका उससे कोई सम्बन्ध नहीं, एक ऐसा जगत् जिसमें वास्तविक प्राणिक सत्ताएं निवास करती हैं, ऐसी सत्ताएं जिनमें बहुत शक्ति

और बहुत सौन्दर्य भी होता है। अधिकांश ऐसे व्यक्ति जो पर्याप्त गहरे आध्यात्मिक जीवन के बिना गृह्यविद्या में सतही रुचि रखते हैं, उनके बहकावे में आ जाते हैं। कुछ ऐसे व्यक्ति उन्हें सर्वोच्च भगवान् समझ बैठते हैं और उनकी पूजा करते हैं। सामान्य तौर पर धर्मों का निर्माण इसी प्रकार हुआ है। उन्हें महान सफलता मिली है। वे अनेक धर्मों के परम प्रभु हैं—वे प्राणिक जगत् की सत्ताएं हैं और वे अभिभूत कर देनेवाले सौन्दर्य का रूप ग्रहण कर सकते हैं। वे संसार के सबसे बड़े ढोंगी और खतरनाक होते हैं। उनसे धोखा न खाने और उनसे बचने के लिए सहज आध्यात्मिक वृत्ति तथा सहज आध्यात्मिक शुद्धता की आवश्यकता होती है।

अनेक धर्मों तथा मतों की स्थापना रहस्योद्घाटनों तथा चमत्कारों पर प्रतिष्ठित हुई है और इसका कण-कण प्राणिक सत्ताओं से आता है। यह मानव जीवन में सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है। मेरा तात्पर्य आध्यात्मिक जीवन से नहीं है बल्कि उन लोगों के जीवन से है जो अज्ञात जगत् के साथ व्यवहार करते हैं।

प्राणिक जगत् में ऐसे अनेक आसमान हैं (स्वर्ग नहीं) जो सचमुच बैकुण्ठ के समान हैं। स्वाभाविक है कि सच्चा दिव्य तत्त्व वहां नहीं है, परन्तु केवल आध्यात्मिक शुद्धता और सच्चा आध्यात्मिक संवेदन तुम्हें अन्तर दिखा सकता है। वे सब जो प्राणिक या मानसिक जगत् में रहते हैं पूरी तरह धोखा खा जाते हैं। वे अधिक मात्रा में अद्भुत और चमत्कारिक वस्तुएं देखते हैं।

इस वार्ता में इस पक्ष को समझाने की उपेक्षा करके मैंने इस विषय के अधिकांश भाग को छोड़ दिया है। प्रायः मैं उन चीजों के बारे में नहीं बोलती अथवा उनकी चर्चा केवल प्रसंगवश कर देती हूँ—यह लोगों को भयभीत कर देता है और वे तुरन्त चकित होने लगते हैं—“ओह, क्या यह सचमुच में देवता है? क्या यह ऐसा... है, क्या वह वैसा... है? क्या यह छद्मवेश में शैतान हो सकता है? वे आतंकित हो जाते हैं।

यह पूरी तरह सच है कि उन लोकों के साथ निपटने के लिए व्यक्ति की गुरु के द्वारा रक्षा की जानी चाहिये, एक सच्चा गुरु, ज्ञानी अथवा उसमें शुद्धता हो (सन्तता नहीं), अमिश्रित प्राणिक और मानसिक शुद्धता। बहुत प्रायः ही श्रीअरविन्द या मेरे भक्तों के समक्ष जो वास्तव में सच्चे हैं और जिनमें आध्यात्मिक शुद्धता है, ऐसी दर्जनों सत्ताएं प्रकट होती हैं और कहती हैं —“मैं श्रीअरविन्द हूँ”। यह हमेशा होता है ठीक-ठीक बाहरी रूपों के साथ—ऐसा छद्मवेश धारण करना ऐसी सत्ताओं के लिए आसान होता है।

उनसे धोखा न खाने के लिए आन्तरिक चैत्य शुद्धता चाहिये—तुम हमेशा ऐसा महसूस करते हो जिससे तुम्हारे लिए धोखा खाना असम्भव हो जाता है। परन्तु अन्यथा बहुत सारे लोग झांसे में आ ही जाते हैं।

मैं इसके बारे में बात करना इसलिए पसन्द नहीं करती क्योंकि लोगों में भेद या अन्तर समझने की विवेचन शक्ति नहीं है। उनमें भय के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जायेगा और फिर किसी चीज में भी विश्वास नहीं करेंगे। वे हमेशा प्रश्न करते रहेंगे, “ओह, क्या यह भी धोखा नहीं है?”... इससे सब कुछ पंगु हो जाता है। इसलिए मैंने इस वार्ता में इसके बारे में कुछ नहीं कहा।

इसके बारे में दो-चार शब्द तो कहिये।

कम से कम इतनी चर्चा तो होनी चाहिये कि प्राणिक जगत् में कुछ सत्ताएं इच्छानुसार पूर्ण रूप से छद्मरूप धारण कर सकती हैं—सभी चकाचौंध करने वाली ज्योतियां पायी जाती हैं परन्तु एक खास गुणवत्ता के साथ। इसलिए जो परम ज्योति तक पहुँच चुके हैं वे धोखा नहीं खा सकते। क्योंकि... यह अपरिभाष्य है, कुछ ऐसी चीज जिसे केवल आध्यात्मिक संवेदन ही महसूस कर सकता है : पूर्ण सुरक्षा, पूर्ण शान्ति, पूर्ण शुद्धता (यद्यपि “शुद्धता” शब्द का प्रयोग करने में झिझकती हूँ, जिसने एक ऐसा मूर्खतापूर्ण अर्थ ग्रहण कर लिया है); मेरा तात्पर्य है समस्त मिश्रण से रहित।

जिनमें आध्यात्मिक संवेदन है उन्हें सर्वाधिक चकाचौंध करनेवाली ज्योतियां कृत्रिम लगेंगी—वे नकली, उदासीन, सख्त, आक्रामक, कपटपूर्ण महसूस करेंगे। परन्तु मुख्य बिन्दु यह है कि तुम्हें स्वयं इन सबसे परे होना होगा जिससे तुम मूर्ख न बनो। तुम्हें धोखा खाने से बचना होगा।

सच में, इसी कारण मैं गुह्यविद्या के विषय में बात करना पसन्द नहीं करती। यह लोगों को एक अत्यन्त खतरनाक जगत् के सम्पर्क में ला देती है, जहां सुरक्षापूर्वक तब तक प्रवेश नहीं किया जा सकता जब तक व्यक्ति रूपान्तरित नहीं हो, जब तक व्यक्ति में सच्ची आध्यात्मिक चेतना न आ जाये। (मैं यह नहीं कह सकती कि उसे सन्त होना चाहिये, क्योंकि यह सच नहीं है। कुछ सन्त प्राणिक जगत् में प्रवेश करते हैं और उसमें उलझ जाते हैं!) केवल इसी शर्त पर तुम पूर्ण सुरक्षित हो। अतः आध्यात्मिक चेतनावाले व्यक्ति कहाँ हैं? वास्तव में वे अत्यन्त अल्प हैं। और इसके अतिरिक्त, जिनमें गुह्यविद्या के प्रति उत्सुकता रहती है उनमें सब प्रकार की प्राणिक गतिविधियां होती हैं

जिनके कारण उनके लिए उस जगत् में प्रवेश करना खतरनाक हो जाता है। निस्सन्देह, गुरु की उपस्थिति के कारण वे सुरक्षा के साथ जा सकते हैं, उसके साथ तुम कहीं भी जा सकते हो। यदि गुरु के साथ जाते हो तब सब सकुशल है। उसे ज्ञान है और वह तुम्हारी रक्षा करता है। किन्तु वहाँ अकेले जाना... तुम्हें स्वयं भगवान् की रक्षा की जरूरत पड़ेगी। अथवा गुरु द्वारा रक्षा जो भगवान् का प्रतिनिधि होता है। गुरु की रक्षा के साथ तुम सुरक्षित हो।

— मदर्स एजेण्डा, वॉल्यूम ३, पृ. ११६-११८

आध्यात्मिक ज्ञान

गीता तब हमें बताती है कि आध्यात्मिक ज्ञान क्या है अथवा बल्कि यह कहती है कि ज्ञान की शर्तें क्या हैं, उस व्यक्ति की पहचान, चिह्न जिसकी आत्मा आंतरिक प्रज्ञा की ओर अभिमुख हो गयी है। ये चिह्न ज्ञानी व्यक्ति की मान्यताप्राप्त तथा परम्परागत पहचान हैं—बाह्य और सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति से हृदय की विमुखता, उसका अन्तर्मुखी तथा मननशील भाव, स्थिर मन तथा अचंचल समता, अन्तरतम तथा महानतम सत्त्यों पर, वास्तविक एवं शाश्वत वस्तुओं पर उसके विचार एवं संकल्प की अटल दृढ़ता। सबसे पहले आती है एक सुनिश्चित नैतिक अवस्था, स्वाभाविक सत्ता पर एक सात्त्विक, प्रशासनिक व्यवस्था। उसमें सांसारिक गर्व तथा उद्वण्डता नहीं होती। एक निष्कपट आत्मा, चिर सहिष्णु तथा हितकारी हृदय, उसमें होती है—मन तथा शरीर की शुद्धता, शान्त दृढ़ता, स्थिरता, आत्म नियन्त्रण तथा निम्न प्रकृति पर प्रभुत्व तथा गुरु के लिए हार्दिक पूजा चाहे वह आन्तरिक दिव्य गुरु हो अथवा मानव गुरु जिसमें भागवत प्रज्ञा मूर्त रूप ले चुकी हो—-क्योंकि गुरु के प्रति वह श्रद्धा का बोधक होता है। फिर आती है बाहरी जगत् के प्रति अधिक उदार तथा अधिक मुक्त मनोवृत्ति, एक पूर्ण अनासक्ति तथा समता की मनोवृत्ति, इन्द्रियों के विषयों के प्रति स्वाभाविक सत्ता के आकर्षण का दृढ़तापूर्वक निष्कासन और निरन्तर कोलाहल मचानेवाले अहंबोध, अहं-धारणा, अहं-प्रेरणा के दावों से आमूल मुक्ति जो सामान्य मनुष्य को उत्पीड़ित करते हैं। उसके बाद परिवार तथा गृह के प्रति आसक्ति तथा तल्लीनता से व्यक्ति संलग्न नहीं रहता। इसके स्थान पर, इन प्राणिक तथा पाशविक गतिविधियों की जगह रह जाता है एक अनासक्त संकल्प, बोध तथा बुद्धि, भौतिक मनुष्य के सामान्य जीवन की दोषपूर्ण प्रकृति और इसके साथ इसकी

जन्म, मृत्यु, रोग, आयु की निरुद्देश्य तथा कष्टदायक गुलामी का गहन ज्ञान, समस्त सुखद या दुःखद घटनाओं के प्रति सतत समभाव—क्योंकि अन्तस्थ अन्तरात्मा बाह्य घटनाओं के प्रति अभेद्य रहती है—और ध्यानस्थ मन जो भीड़ और जनसमूह के निरर्थक शोरगुल से दूर एकान्त की ओर अभिमुख रहता है। और अन्त में, आता है एक सुदृढ़, आन्तरिक मोड़ उन चीजों के प्रति जो सचमुच महत्त्वपूर्ण होते हैं—अस्तित्व के सच्चे बोध तथा विशाल सिद्धान्तों का दार्शनिक ज्ञान, आन्तरिक आध्यात्मिक ज्ञान तथा प्रकाश की शान्त निरन्तरता, अविचल भक्ति का योग, भागवत प्रेम, वैश्व तथा सनातन उपस्थितिके प्रति हृदय की गहरी और सतत आराधना का भाव।

Essays on the Gita, CWSA Vol.19, p.414-15

— श्रीअरविन्द

पूर्णयोग का स्वरूप

पूर्णयोग का स्वरूप, इस प्रकार कल्पित, इस प्रकार प्रतिबन्धित, इन आध्यात्मिक साधनों द्वारा प्रगति करता हुआ, प्रकृति के पूर्ण रूपान्तरण की ओर उन्मुख अपने आप ही जीवन की सामान्य गतिविधियों के प्रश्न का उत्तर तथा इस योग में उनके स्थान को निर्धारित कर देता है।

यहां कर्मों तथा जीवन का किसी प्रकार का मठवादी अथवा चिन्तनशील अथवा गुह्यवादी बहिष्करण, ध्यान में एकनिष्ठ तल्लीनता तथा निष्क्रियता. जीवनी शक्ति तथा इसकी गतिविधियों को कम महत्त्व देना या इसकी भर्त्सना करना, पार्थिव प्रकृति में अभिव्यक्ति की किसी प्रकार की अस्वीकृति—ये सब यहां बिलकुल नहीं हो सकते। साधक के लिए कुछ समय के लिए अपने भीतर निर्वर्तित होना, आन्तरिक सत्ता में डूब जाना, एक खास आन्तरिक परिवर्तन या उपलब्धि तक जिसके बिना भावी प्रभावशाली क्रिया कठिन या असम्भव हो जाये—अज्ञानपूर्ण जीवन के कोलाहल से अपने को अलग रखना आवश्यक हो सकता है। परन्तु यह केवल एक विशेष अवधि के लिए, एक प्रासंगिक वृत्त, एक अस्थायी आवश्यक अथवा एक प्रारम्भिक आध्यात्मिक कार्यसाधन-युक्ति तो हो सकती है, परन्तु इस योग का नियम अथवा सिद्धान्त नहीं हो सकता।

मानव जीवन की गतिविधियों को धार्मिक दृष्टि से अथवा नीतिशास्त्र के आधार पर या दोनों के दृष्टिकोण से विभाजित करना, अथवा पूजाकर्म अथवा

लोकोपकार तक इन्हें सीमित कर देना पूर्णयोग की भावना के विरुद्ध होगा। कोई भी मात्र मानसिक नियम अथवा मात्र मानसिक स्वीकृति या परित्याग इसके अनुशासन के प्रयोजन तथा विधि के विपरीत होगा। सब कुछ को आध्यात्मिक ऊंचाई तक उठाना होगा और आध्यात्मिक आधार पर रखना होगा। आन्तरिक आध्यात्मिक परिवर्तन तथा बाह्य रूपान्तरण की उपस्थिति को आंशिक नहीं वरन् सम्पूर्ण जीवन पर लागू करना होगा। इस परिवर्तन में मदद करनेवाली हर चीज को स्वीकार करना होगा। वह सब जो इस परिवर्तन के लायक नहीं है या अनुपयुक्त है या अपने को रूपान्तरण के आन्दोलन के प्रति समर्पण करने से इन्कार करता है उसे अस्वीकार करना होगा। वस्तुओं के या जीवन के किसी रूप, किसी पदार्थ, किसी कार्य के प्रति कोई आसक्ति नहीं रखनी होगी। आवश्यकता पड़ने पर सब कुछ का परित्याग कर देना होगा। उस समस्त को स्वीकार करना होगा जिसे भगवान् दिव्य जीवन के उपादान के रूप में चयन करते हैं। परन्तु जो स्वीकार करता है या इनकार करता है वह न मन होगा न कामना का खुला या छद्मावृत प्राणिक संकल्प और न नैतिक संवेदन बल्कि चैत्य पुरुष का आग्रह होगा, योग के भागवत मार्गदर्शक का आदेश होगा, उच्चतर आत्मन या पुरुष की अन्तर्दृष्टि या गुरु का ज्योतिर्मय निर्देश होगा। आत्मन का मार्ग मानसिक मार्ग नहीं है। एक मानसिक नियम अथवा मानसिक चेतना इसका निर्णायक अथवा इसका अग्रणी नहीं बन सकती।

उसी प्रकार आध्यात्मिक तथा मानसिक अथवा आध्यात्मिक तथा प्राणिक—दो चेतना के क्रमों का सम्मिश्रण अथवा जीवन का मात्र आन्तरिक परिष्करण जिसका बाह्य अपरिवर्तित हो, इस योग का विधान अथवा लक्ष्य नहीं हो सकता। समस्त जीवन को ही समेटना होगा, परन्तु समस्त जीवन को रूपान्तरित भी करना होगा। समस्त को अतिमानसिक प्रकृति में एक आध्यात्मिक सत्ता का एक अंग, एक रूप, एक पर्याप्त अभिव्यक्ति बनना होगा। यह भौतिक जगत् में एक आध्यात्मिक क्रान्ति की चरम सीमा तथा सर्वोच्च प्रवृत्ति है। और जिस प्रकार प्राणिक पशु से मानसिक मनु के परिवर्तन ने आधारभूत चेतना में, प्रयोजन में, महत्त्व में जीवन को बिलकुल भिन्न बना दिया, उसी प्रकार भौतिकीकृत मानसिक सत्ता से आध्यात्मिक तथा अतिमानसिक सत्ता में परिवर्तन को—जो भौतिक पदार्थ का उपयोग तो करेगा परन्तु उससे अधिकृत नहीं होगा—जीवन को अधिगृहीत करना होगा और इसे त्रुटिपूर्ण, अपूर्ण, सीमित मानव की अपेक्षा आधारभूत चेतना, प्रयोजन तथा महत्त्व में बिलकुल भिन्न

बनाना होगा। जीवन के कार्यकलापों के सभी रूप जो परिवर्तन को झेल नहीं पायेंगे उन्हें समाप्त हो जाना होगा, जो झेल पायेंगे वे जीवित बने रहेंगे और आत्मा के राज्य में प्रवेश करेंगे। एक भागवत शक्ति कार्यरत है और वही शक्ति प्रति क्षण निर्णय करेगी कि क्या करना है अथवा क्या नहीं करना है, क्या तात्कालिक रूप से या स्थायी रूप से ग्रहण करना है या परित्याग करना है। यदि हम उसके स्थान पर अपनी कामना या अपने अहं को न आने दें और इसके लिए अन्तरात्मा को हमेशा सजग बनाये रखें — भागवत निर्देश के प्रति हमेशा सचेत, हमेशा चौकस, आन्तरिक एवं बाह्य अदिव्य बहकावों से सावधान—तब वह शक्ति पर्याप्त है और अकेली समर्थ है तथा वह हमें उन मार्गों तथा साधनों द्वारा परिपूर्णता तक अवश्य ले जायेगी जो इतने विशाल, इतने गहरे, इतने जटिल हैं कि मन के लिए उन्हें समझ पाना कठिन है, आदेश देना तो दूर की बात है। यह दुःसाध्य, कठिन तथा संकटपूर्ण मार्ग है परन्तु अन्य मार्ग कोई नहीं है।

केवल दो सूत्र हैं जो कठिनाई को कम करेंगे तथा संकट को टाल देंगे। व्यक्ति को वह सब अस्वीकार करना होगा जो अहं से, प्राणिक कामना से, मात्र मन से तथा इसकी धृष्ट, विवेचनात्मक अक्षमता से आता है और वह सबसे जो अज्ञान के इन दलालों की सेवा करता है। व्यक्ति को अन्तरतम अन्तरात्मा की आवाज को, गुरु के निर्देश को, स्वामी के आदेश को, भगवती माता की कार्यप्रणाली को सुनना, समझना सीखना होगा। जो भी शरीर की कामनाओं और दुर्बलताओं, प्राण के उग्र अज्ञान के कारण इसकी लालसाओं और आवेगों, अपने अशांत और अंधकारमय व्यक्तिगत मन की मांगों के साथ चिपका रहता है वह कभी भी सच्चे आंतरिक विधान को प्राप्त नहीं कर सकता। और वह दिव्य परिपूर्ति के मार्ग में बाधाओं का अम्बार खड़ा कर रहा है। जो भी व्यक्ति उन तमाच्छादन करनेवाले माध्यमों की खोज कर इनका परित्याग करने की सामर्थ्य रखेगा तथा अपने अन्दर तथा बाहर सच्चे मार्गदर्शक की पहचान कर उसका अनुगमन कर सकेगा, वह आध्यात्मिक विधान का अनुसन्धान कर लेगा और योग का लक्ष्य प्राप्त कर लेगा।

चेतना का एक आमूलचूल तथा समग्र परिवर्तन न केवल सम्पूर्ण अभिप्राय बल्कि एक वर्धनशील शक्ति में तथा क्रमिक चरणों द्वारा पूर्णयोग की सम्पूर्ण विधि है।

The Synthesis of Yoga, CWSA Vol.23, p.185-187

— श्रीअरविन्द

श्रीमाँ के प्रति आत्म समर्पण तथा उनकी शक्ति की कार्यप्रणाली

क्या पुरुष ही सम्पूर्ण सत्ता में क्रियाशील श्रीमाँ की शक्ति को सहमति या स्वीकृति प्रदान करता है?

हां।

यदि पुरुष श्रीमाँ की कार्यप्रणाली को स्वीकृति प्रदान न करे तब क्या इसका अर्थ यह है कि अन्य सत्ताएं (मानसिक, प्राणिक, भौतिक तथा चैत्य) भी साधक को श्रीमाँ की कृपा को प्राप्त करने में समर्थ बनाने के लिए सामने नहीं आयेंगी?

नहीं। पुरुष प्रायः अपनी स्वीकृति रोक रखता है और अपने स्थान पर अन्य सत्ताओं को सहमति या अस्वीकृति देने देता है।

(२२ अप्रैल १९३३)

*

केन्द्रीय समर्पण करो। शेष श्रीमाँ की शक्ति करेगी।

(२५ अक्टूबर १९३३)

*

कुछ भी असम्भव नहीं है यदि चैत्य पुरुष की प्रकृति जाग्रत है और पीछे से श्रीमाँ की चेतना तथा शक्ति के साथ तुम्हारा मार्गदर्शन कर रहा है और तुम्हारे अन्दर कार्य कर रहा है।

CWSA Vol.32, p.213-14

— श्रीअरविन्द

(१९ अक्टूबर १९३५)

तेरी आत्मा में है बल और आवश्यकता नहीं अन्य मार्गदर्शक की सिवा उसके जो तेरे हृदय की शक्तियों के भीतर प्रज्वलित है...
एक शक्ति होगी तुम्हारी चालक और मार्गदर्शक तुम्हारा
एक ज्योति रहेगी चतुर्दिक तुम्हारे और तुम्हारे अन्तःस्तल में;
सावित्री, पृ. ३७४

श्रीमाँ की उपस्थिति के कारण आध्यात्मिक सम्भावना

यहां प्रत्येक साधक को कितनी स्वतन्त्रता दी गयी है! परन्तु हम लोगों में से कितने यह जानते हैं कि गुरु का तात्पर्य क्या है तथा उसे कैसे सम्मान दिया जाता है और उसके साथ कैसे व्यवहार किया जाता है?

निश्चय ही बहुत कम लोग यह महसूस करते प्रतीत होते हैं कि उन्हें कितनी सम्भावना यहाँ दी गयी है—पर यह सब अपेक्षित चैत्य तथा आध्यात्मिक प्रयोजन की अपेक्षा प्राणिक बुदबुदाहट अथवा भौतिक तमस् में बदल दिया गया है।

७ मार्च १९३६

आप लिखते हैं, “निश्चय ही बहुत कम लोग यह महसूस करते प्रतीत होते हैं कि उन्हें कितनी सम्भावना यहाँ दी गयी है।” ‘सम्भावना’ से ठीक-ठीक आपका क्या तात्पर्य है? सम्भावना किसकी?

मैं किसी विशेष चीज के बारे में नहीं कह रहा था—बल्कि सम्पूर्ण आध्यात्मिक सम्भावना—जो यहाँ श्रीमाँ की उपस्थिति के कारण है, के बारे में कह रहा था। बहुत कम लोग यह अनुभव करते हैं कि उसका अर्थ क्या है और यहाँ तक कि जिन्हें इसका कुछ आभास है वे भी इसका लाभ नहीं उठाते और वे अपनी निम्न प्रकृति को प्रगति में बाधक बनने देते हैं।

CWSA Vol.32, p.175-176

— श्रीअरविन्द

१ मार्च १९३६

महत्वाकांक्षी गुरु

जो गुरु यह विश्वास करता है कि मानवता को देने के लिए उसके पास एक महान सत्य है तथा जो ढेर सारे शिष्य बनाना चाहता है और जब शिष्यगण उसे छोड़ कर चले जाते हैं तब वह दुःखी हो जाता है अथवा जो भी उसके पास आता है, शिष्य बनाने के लिए उसे घेर लेता है — वह गुरु स्पष्ट रूप से अपनी महत्वाकांक्षा का ही अनुगमन कर रहा है।

CWM Vol.3, p.59

— श्रीमाँ

मातृवाणी गुरु

हम लोग जिस युग में रहते हैं उसमें केवल सफलता तथा इससे प्राप्त होनवाली सन्तुष्टियों का महत्त्व है। फिर भी, असन्तुष्ट व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जा रही है और वे जानना चाहते हैं कि जीवन का प्रयोजन क्या है। और दूसरी ओर, कुछ ऋषि-मुनि हैं जो यह जानते हैं और वे दुःखी मानवता की सहायता करने तथा ज्ञान का प्रकाश फैलाने का प्रयास करते हैं। जब दोनों मिलते हैं, वह जो जानता है और वह जो जानना चाहता है—तब जगत् में एक नयी आशा का उद्भव होता है और कुछ प्रकाश व्याप्त अंधकार में प्रवेश करता है।

*

पाश्चात्य मन को हमेशा गुरु को पूर्ण रूप से आत्म समर्पण करना कठिन लगता है और गुरु के प्रति पूर्ण और प्रश्न और सन्देह रहित समर्पण किये बिना तुम्हारे लिए उसकी सहायता अशक्त हो जाती है। यही कारण है कि प्रायः मैं पाश्चात्य व्यक्तियों को यह सलाह देती हूँ कि वे मार्गदर्शन तथा उपस्थिति अपने भीतर प्राप्त करें। यह सच है कि यह प्रक्रिया प्रायः अनिश्चितता तथा आत्मवंचना लाती है और अहंकार की आवाज को भगवान का मार्गदर्शन समझने की भूल की सम्भावना रहती है।

दोनों ही अवस्थाओं में, पूर्ण निष्कपटता तथा अमिश्रित विनम्रता तुम्हारी सुरक्षा बन सकती है।

मेरे आशीर्वाद के साथ,

— श्रीमाँ

२१ जनवरी १९५५

यदि तुम्हारे अन्दर श्रद्धा और विश्वास है तब तुम गुरु के मानवीय रूप की पूजा नहीं करते बल्कि परम प्रभु की पूजा करते हो जो उसके माध्यम से अभिव्यक्त होता है।

परेशान मत हो और जिस माध्यम से भी मदद मिलती है अपने को परम प्रभु को बिना कुछ बचाये समर्पित कर दो।

स्नेह और आशीर्वाद के साथ,

CWM Vol.14, p.60

— श्रीमाँ

प्रत्येक व्यक्ति को उसकी समझने की योग्यता के अनुसार ज्ञान दिया जाता है।

इसका तात्पर्य यह है कि एक व्यक्ति को दिया गया ज्ञान दूसरे के लिए उपयोगी अथवा अच्छा नहीं भी हो सकता है। यही कारण है कि गुरु की व्यक्तिगत शिक्षा दूसरों के सामने कभी प्रकट नहीं करनी चाहिये।

*

शिष्य गुरु के द्वारा रूप की पहचान करते हैं, अन्य लोग रूपों के द्वारा गुरु की पहचान करते हैं।

*

भारतीयों का विश्वास है अथवा उनका यह अनुभव है कि भगवान् मनुष्य के भीतर निवास करते हैं। यूरोपवासी इसमें विश्वास नहीं करते। उनके लिए भगवान् कहीं ऊपर रहते हैं। वे केवल ईसा मसीह में अवतरित हुए। इसलिए वे किसी मनुष्य के समक्ष नहीं झुकते। परन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति के समक्ष नतमस्तक हो जिसने भागवत चेतना को मूर्त रूप दिया है—निस्सन्देह श्रद्धा के साथ—तब वह व्यक्ति अधिक आसानी से अपनी चेतना (अथवा अनुभव) को दूसरे में संचारित कर सकता है।

CWM Vol.14, p.61

—श्रीमाँ
मार्च १९७३

जैसे एक तारा अकेला घूमता आसमान में
अन्तराल की अनन्तता से रहता हुआ अविस्मित,
अपनी ज्योति से करता पर्यटन असीम का,
वैसे ही महान होते हैं सबलतम जब वे डटे रहते हैं अकेले ।
सत्ता की एक भागवत प्रदत्त सामर्थ्य होती है उनकी शक्ति,
ज्योति की अन्तरात्मा के एकान्त से आई किरण बनती मार्ग दर्शक;
जो आत्मा रह सकती है अकेली अपने संग, मिलती है भगवान से;
इसका एक मात्र विश्व होता है उनका मिलन स्थल ।

सावित्री, पृ.४६०-६१

गुरु के प्रति एकनिष्ठ श्रद्धा

यह एक सुज्ञात तथ्य है कि व्यक्ति को अपनी आध्यात्मिक अनुभूति के बारे में कभी नहीं बोलना चाहिये। इससे अनुभूति में संचित वह ऊर्जा क्षण भर में तिरोहित हो जाती है जो व्यक्ति की प्रगति को त्वरित कर सकती थी। इस नियम का एकमात्र अपवाद अपने गुरु के साथ हो सकता है जब व्यक्ति गुरु से अनुभूति की व्याख्या या अर्थ अथवा विषय से सम्बन्धित शिक्षा प्राप्त करना चाहता है। यह सच है कि व्यक्ति इन सब चीजों के बारे में बिना किसी खतरे के केवल अपने गुरु से कह सकता है, क्योंकि केवल गुरु ही अपने ज्ञान के द्वारा अनुभूति के चतुर्विधों को तुम्हारे हित में नये आरोहण की ओर सोपान के रूप में प्रयुक्त कर सकता है।

यह भी सच है कि गुरु को स्वयं भी मौन के इस नियम का पालन करना चाहिये जहाँ तक उसकी अपनी व्यक्तिगत अनुभूति का प्रश्न है। प्रकृति में प्रत्येक चीज गतिशील है। इस प्रकार जो गतिशील नहीं है वह पीछे रह जाता है। गुरु को भी शिष्यों के समान ही प्रगति करना होगा यद्यपि उसकी प्रगति उसी धरातल पर नहीं हो सकती। और उसके लिए भी अपनी अनुभूति के बारे में बोलना अनुकूल नहीं है। शब्दों में व्यक्त करने से अनुभूति में निहित प्रगति के लिए उपयुक्त गत्यात्मक शक्ति का अधिकांश भाग लुप्त हो जाता है। किन्तु, दूसरी ओर वह अपने शिष्यों को अपनी अनुभूति के बारे में समझाने पर उनकी प्रगति में बहुत सहायता पहुँचाता है। वह अपने ज्ञान के द्वारा जानता है कि किस सीमा तक एक की दूसरे के लिए बलि दे सकता है या देना चाहिये। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उसके विवरण में कोई घमण्ड या शेखीबाजी नहीं प्रवेश करनी चाहिये, क्योंकि जरा-सा भी दम्भ उसे गुरु नहीं बल्कि ढोंगी बना देगा।

जहाँ तक शिष्य का प्रश्न है, मैं उसे कहूँगी : “हर हालत में अपने गुरु के प्रति निष्ठावान् बने रहो, चाहे वह कोई भी हो। वह तुम्हारा मार्गदर्शन वहाँ तक करेगा जहाँ तक तुम जा सकते हो। परन्तु यदि तुम्हारे सौभाग्य से भगवान् गुरु बन जायें, तब तुम्हारी सिद्धि की कोई सीमा नहीं होगी।” फिर भी, जब भगवान् धरती पर अवतार बन कर आते हैं, उन्हें भी प्रगति के उसी विधान का पालन करना पड़ता है। उनकी अभिव्यक्ति का यन्त्र उनकी भौतिक सत्ता को भी जिसे उन्होंने ग्रहण किया है—प्रगति की सतत अवस्था में रहनी चाहिये तथा उनकी व्यक्तिगत आत्माभिव्यक्ति का विधान एक प्रकार से पार्थिव

प्रगति के सामान्य विधान से जुड़ा हुआ रहता है। इस प्रकार शरीर धारण करने वाले देवता तब तक धरती पर पूर्ण नहीं बन सकते जब तक मनुष्य पूर्णता समझने और स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हो जाते। वह दिन आयेगा जब हर चीज जो आज भगवान् के प्रति कर्तव्य समझ कर की जाती है, भगवान् के प्रति प्रेमवश की जायेगी। प्रगति प्रयास तथा प्रायः ही संघर्ष न होकर आनन्द बन जायेगी। अथवा अधिक ठीक-ठीक, प्रगति अहं के विरोध को बाध्य करने के बदले—जिसमें बहुत परिश्रम और कभी-कभी बहुत कष्ट की माँग की जाती है—सम्पूर्ण सत्ता की पूर्ण सहमति के साथ आनन्द में होगी।

निष्कर्ष के रूप में मैं कहूँगी : यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा वचन सत्य को व्यक्त करे और इस प्रकार दिव्य शब्द की शक्ति ग्रहण कर ले, तब पहले से कुछ यह सोच कर न रखो कि क्या बोलना है, यह निर्णय न करो कि क्या बोलना अच्छा है या क्या बोलना बुरा है, जो तुम कहने जा रहे हो उसके प्रभाव का अनुमान न करो। मन में शान्त बने रहो तथा सर्व प्रज्ञा, सर्व ज्ञान, सर्व चैतन्य के प्रति सतत अभीप्सा की सच्ची मनोवृत्ति के साथ अटल बने रहो। तब यदि तुम्हारी अभीप्सा निष्कपट और सच्ची है, यदि वह तुम्हारी अच्छा करने तथा सफल होने की महत्त्वाकांक्षा का आवरण नहीं है, यदि वह शुद्ध है, सहज है तथा समग्र है तब तुम बहुत सरलता से बोल सकोगे, ऐसे शब्द कहोगे जिन्हें कहना चाहिये, न अधिक न कम, तब उनमें एक सृजनात्मक शक्ति आ जायेगी।

CWM Vol.12, p.63-64

— श्रीमाँ

एक गुरु-दीक्षा कथा

इस सायंकाल मैं तुम लोगों को एक लघु कथा पढ़कर सुनाने जा रही हूँ जो मुझे काफी शिक्षाप्रद लगी। यह प्राचीन युग की कहानी है, छापेखानों और पुस्तकों के समय से पहले की, उन दिनों की, जब केवल गुरु या दीक्षित को ही ज्ञान होता था और केवल उसी को ज्ञान दिया जाता था जिसे गुरु अधिकारी समझता था। और उसके लिए सामान्य रूप से 'अधिकारी' का अर्थ होता था वह व्यक्ति जो ज्ञान को व्यवहार में प्रयुक्त करे। वह एक सत्य का ज्ञान देता था और तुमसे अपेक्षा यह करता था कि तुम उसे आचरण में प्रयोग करो।

और जब तुम उसे आचरण में ले आते तब वह दूसरा ज्ञान देने के लिए सहमत होता था।

अभी स्थिति भिन्न है। प्रत्येक व्यक्ति और कोई व्यक्ति पुस्तक रख सकता है, पूरी पुस्तक पढ़ ले सकता है और जैसी उसकी मर्जी हो अपने आचरण में उसे लाने के लिए वह स्वतन्त्र होता है। यहाँ तक तो ठीक है, किन्तु यह बहुतां के मन में भ्रम पैदा कर देता है और जिन लोगों ने बहुत पुस्तकें पढ़ ली हैं वे समझते हैं कि यह काफी है और अब सब तरह की चमत्कारिक चीजें उसके साथ अवश्य घटनी चाहिये, क्योंकि उन्होंने पुस्तकें पढ़ ली हैं और उन्हें आचरण में लाने का कष्ट करने की जरूरत नहीं है। अतः वे अधीर हो जाते हैं और कहते हैं, “यह कैसी बात है यद्यपि मैंने यह सब पढ़ लिया है फिर भी मैं वैसा का वैसा ही हूँ, अभी भी उन सारी कठिनाइयों को झेल रहा हूँ और कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हुई है।” मैं प्रायः इस प्रकार की टिप्पणियाँ सुनती हूँ।

वे एक चीज भूल जाते हैं वह यह कि उन्होंने ज्ञान तो प्राप्त कर लिया है—बौद्धिक, मानसिक ज्ञान—परन्तु अधिकारी बनने के पूर्व ही यानी अभ्यास में लाने के पहले ही बौद्धिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है और स्वभावतः उसकी चेतना की अवस्था और उसके विचारों के बीच, उस मानसिक ज्ञान के बीच जिसके बारे में वे बहुत कुछ बोल सकते हैं परन्तु उसका अपने जीवन में आचरण नहीं किया है, विसंगति आ गयी है।

अतः मैं उन लोगों के लिए जो ज्ञान को बिना आचरण में लाये परिणाम के लिए उतावले हो जाते हैं, यह कहानी कहने जा रही हूँ, यह कहने के लिए कि प्राचीन काल में कोई यों ही पुस्तक उठाकर पढ़ नहीं सकता था, और जब व्यक्ति को गुरु अथवा दीक्षित पर ज्ञान के लिए निर्भर रहना पड़ता था जो सिर्फ उसी के पास होता था। उसे भी किसी अन्य गुरु, अन्य दीक्षित से ज्ञान मिला था और उसने जब तुम्हें इसका अधिकारी समझा तब उसने तुम्हें प्रदान किया।

अतः यह रही कहानी! (श्रीमाँ पढ़ती हैं)

एक गुरु-दीक्षा कथा

(गुजराती से अनूदित)

एक समय की बात है। एक महात्मा रहते थे जो एक महान तपस्वी और महान ज्ञानी थे। वे सबके श्रद्धा के पात्र थे, वयोवृद्ध और ज्ञानवान। उनका नाम था जुनून। अनेक युवक दीक्षा लेने के लिए उनके पास आया करते थे। वे उनके आश्रम में ठहरते, ज्ञानी बन जाते और एक दीर्घ तथा स्वाध्यायपूर्ण एकान्तवास के बाद अपने गृह वापस चले जाते थे।

एक दिन एक युवक उनके पास आया। उसका नाम था युसुफ हुसैन। महात्मा ने उसका परिचय पूछे बिना ही उसे अपने साथ ठहरने की स्वीकृति दे दी। चार वर्ष बीत गये। एक दिन प्रातःकाल जुनून ने युसुफ को बुलाया और पहली बार प्रश्न किया, “यहाँ क्यों आये हो?” बिना हिचकिचाहट के युसुफ ने तुरन्त उत्तर दिया, “धार्मिक दीक्षा लेने के लिए।” जुनून ने कुछ नहीं कहा। उन्होंने एक सेवक को बुला कर पूछा, “क्या तुमने डिब्बा तैयार कर दिया है जैसा मैंने कहा था?”

“जी हाँ, गुरुजी, वह तैयार है।”

“तुरन्त ले आओ।” जुनून ने आदेश दिया।

सेवक ने बड़ी सावधानी से डिब्बे को महात्मा के सामने रखा। महात्मा ने डिब्बे को उठाकर युसुफ को दिया और कहा, “मेरा मित्र नील नदी के तट पर रहता है। यह डिब्बा उन्हें दे दो। किन्तु सावधानी से इसे ले जाना बन्धु। मार्ग में कोई भूल न करना। यह डिब्बा बड़ी सावधानी से अपने पास रखना और सिर्फ उन्हें ही देना जिनके लिए यह है। जब लौट कर आओगे तब मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा।” महात्मा ने एक बार पुनः उसे अपनी सलाह को दुहराया और नील नदी जाने का मार्ग समझाया। युसुफ ने गुरु के चरणों में नतमस्तक होकर डिब्बे को उठाया और अपने मार्ग पर वह चल पड़ा।

महात्मा के मित्र का आश्रम काफी दूर था और उन दिनों कारें या रेलगाड़ियाँ नहीं थीं। इसलिए युसुफ पैदल चलता रहा। पूरे प्रातःकाल तथा मध्याह्न वह चलता रहा। अपराह्न हो गया। प्रचण्ड ताप सर्वत्र विकीर्ण हो रहा था। इसलिए वह मार्ग के किनारे एक पुराने वृक्ष की छाया में थोड़ा आराम करने के लिए बैठ गया। डिब्बा बहुत छोटा था। उसमें ताला नहीं लगा था। इसके अतिरिक्त, युसुफ ने उसकी ओर ध्यान तक नहीं दिया था। उसके गुरु ने एक

डिब्बा ले जाने के लिए उसे कहा था और वह बिना कुछ प्रश्न किये, बिना सोचे चल पड़ा था।

परन्तु अब, अपराह्न के विश्राम के पश्चात् युसुफ सोचने लगा। उसका मन खाली होने के कारण भ्रमण करने लगा। ऐसे मौकों पर कोई मूर्खतापूर्ण विचार मन में न आये, ऐसा शायद ही कभी होता है। तभी उसकी नजर डिब्बे पर पड़ गयी। वह उसे देखने लगा। “कितना खूबसूरत है डिब्बा!... अरे! इसमें तो ताला लगा नहीं लगता! और कितना हलका है यह! इसके अन्दर कुछ होगा, ऐसा सम्भव नहीं लगता। इतना हलका! शायद खाली होगा?” युसुफ ने हाथ बढ़ाया मानों उसे खोलना चाहता हो। अचानक उसके मन में विचार आया, “लेकिन नहीं, खाली हो या भरा हो, इस डिब्बा में जो भी हो, मुझे क्या मतलब! मेरे गुरु ने इसे अपने मित्र को देने के लिए कहा है, बस! हमें इतना ही से मतलब है। मुझे कुछ और सोचने या चिन्ता करने की क्या आवश्यकता!”

कुछ देर तक युसुफ शान्त, स्थिर बैठा रहा। परन्तु उसका मन चंचल बना रहा। डिब्बे पर अब भी उसकी नजर टिकी थी। कितनी सुन्दर मन्जूषा है यह! “यह खाली लगती है,” फिर सोचने लगा। “खाली डिब्बे को खोलने में हर्ज ही क्या है! यदि ताला लगा होता तब समझता हूँ, खोलना अच्छा नहीं होता!... बिना ताले का डिब्बा! यह कोई गम्भीर बात नहीं होगी। मैं सिर्फ पल भर के लिए खोलूंगा और तुरन्त बन्द कर दूंगा।”

युसुफ का मन डिब्बे के चारों ओर मंडराता रहा। अब उसके लिए अपने विचार को डिब्बे से अलग करना असम्भव हो गया, उस विचार को काबू में रखना असम्भव था जो उसके दिमाग में घुस चुका था। “देखते हैं, केवल एक नजर, सिर्फ एक बार!” एक बार फिर उसने अपना हाथ बढ़ाया परन्तु वापस खींच लिया। फिर शान्त बैठा रहा। पर व्यर्थ! अन्त में युसुफ ने निश्चय कर लिया और बहुत धीरे से डिब्बे को खोला। शायद ही डिब्बा थोड़ा खुला होगा कि फुर्र! एक छोटी-सी चुहिया कूद कर बाहर आयी... और गायब हो गयी। उस बेचारी चुहिया ने छोटे से डिब्बे में बन्द मुक्ति की छलांग भरने में एक पल भी नष्ट नहीं किया!

युसुफ स्तम्भित रह गया। वह विस्फारित नेत्रों से डिब्बे को देखता रहा। वह खाली पड़ा था। उसका उदासी से भरा हृदय धड़कने लगा : “महात्मा ने केवल एक चुहिया भेजा था, एक छोटी-सी चुहिया... और मैं उसे अन्त तक सुरक्षित पहुँचा न सका। सचमुच मैंने भारी भूल कर दी! अब मैं क्या करूँ?”

युसुफ दुःख और पश्चात्ताप से भर गया। परन्तु अब कुछ करने के लिए रह ही क्या गया था। व्यर्थ ही उसने वृक्ष के चारों ओर चक्कर काटा! रास्ते पर ऊपर नीचे देखता रहा। छोटी चुहिया वास्तव में किसी बिल में भाग गयी थी...। काँपते हाथों से युसुफ ने डिब्बे का ढक्कन बन्द किया और टूटे और व्याकुल हृदय के साथ अपनी यात्रा पर पुनः चल पड़ा।

जब वह नील नदी के किनारे अपने गुरु के मित्र के घर पहुँचा तब निराशा और उदासी के साथ महात्मा का उपहार उन्हें देकर एक कोने में खड़ा हो गया। महात्मा के मित्र एक महान् सन्त थे। उन्होंने डिब्बे को खोला और तुरन्त समझ गये कि क्या हुआ था। “अच्छा युसुफ,” उन्होंने कहा, “तो तुमने उस चुहिया को खो दिया... महात्मा जुनून अब तुम्हें दीक्षा नहीं देंगे। परम ज्ञान का अधिकारी होने के लिए व्यक्ति को अपने मन पर पूर्ण नियन्त्रण रखना चाहिये। तुम्हारे गुरु को तुम्हारी संकल्प-शक्ति के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ सन्देह था। इसीलिए उन्होंने तुम्हारी यह परीक्षा ली। और यदि तुम डिब्बे में एक छोटी-सी चुहिया को रखने का छोटा-सा कार्य भी नहीं कर सकते, तब अपने मस्तिष्क में बड़े-बड़े विचारों को और अपने हृदय में सच्चे ज्ञान को धारण करने की आशा कैसे कर सकते हो! कुछ भी महत्त्वहीन नहीं होता। अपने गुरु के पास लौट जाओ। आचरण की स्थिरता बनाये रखना सीखो। अध्यवसाय करते रहो। विश्वास करने योग्य बनो जिससे एक दिन उस महान आत्मा का सच्चा शिष्य बन सको।

हतोत्साहित और निराश युसुफ ने महात्मा के पास लौट कर अपनी भूल स्वीकार कर ली। उन्होंने युसुफ से कहा, “युसुफ, तुमने एक स्वर्णिम अवसर खो दिया। मैंने तुम्हें देख-रेख के लिए एक मूल्यहीन चुहिया दी परन्तु तुम उसे भी नहीं कर पाये। तब तुम सभी सम्पदाओं से भी अधिक मूल्यवान् भागवत सत्य को रखने की आशा कैसे कर सकते हो? उसके लिए आत्म-नियन्त्रण रखना होगा। जाओ और सीखो। अपने मन का स्वामी बनना सीखो, क्योंकि उसके बिना कुछ भी महान कार्य नहीं किया जा सकता।”

युसुफ लज्जित होकर, सिर नीचे किये लौट गया। परन्तु तब से उसके मन में एक ही विचार, एक ही संकल्प था कि वह अपने आपका स्वामी बनेगा। वह वर्षों वर्षों तक अथक परिश्रम करता रहा। उसने तपस्या और कठिन आत्मसंयम का पालन किया और अन्त में वह अपनी प्रकृति का मालिक बनने में सफल हो गया। तब वह पूर्ण आत्मविश्वास के साथ अपने गुरु के पास पुनः गया। महात्मा उसे पुनः देखकर और ज्ञान की दीक्षा के लिए

तैयार पाकर बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार युसुफ ने महात्मा जुनून से महान गुरु- दीक्षा प्राप्त की।

बहुत बहुत वर्षों के बाद युसुफ ज्ञान और पूर्णता में सिद्ध हो गया। वह इस्लाम का एक महान और असाधारण संत बन गया।

(श्रीमाँ बच्चों से कहती हैं)

अतः यह तुम्हें बताने के लिए है कि तुम्हें अधीर या उतावला नहीं होना चाहिये, कि तुम्हें यह समझना होगा कि ज्ञान को वास्तव में अधिकृत करने के लिए, चाहे वह कैसा भी ज्ञान हो, तुम्हें उसे आचरण में लाना होगा, यानी अपनी प्रकृति को वश में करना होगा जिससे इस ज्ञान को क्रिया में अभिव्यक्त करने में समर्थ बन सको।

तुम सबको, जो यहां आ चुके हैं, बहुत चीजें बतायी गयी हैं। तुम्हें सत्य के जगत् के साथ सम्पर्क में रखा गया है, तुम उसमें निवास करते हो, जिस हवा में तुम सांस लेते हो वह उससे भरा हुआ है। फिर भी, तुममें से बहुत कम लोग जानते हैं कि ये सत्य तभी मूल्यवान् हैं यदि ये आचरण में लाये जायें और यह कि यदि तुम इन चीजों को स्वयं जीने का प्रयास न करो और अपने अन्दर उनका ठोस अनुभव न करो तब चेतना, ज्ञान, आत्मा की समता, विश्वव्यापकता, अनन्तता, शाश्वतता, परम सत्य, भागवत उपस्थिति और... ऐसी बहुत चीजों के बारे में बात करना बेकार है। और अपने आपको यह मत कहो, “ओह, मैं यहाँ इतने वर्षों तक रहा! ओह, मैं अपने प्रयासों का परिणाम पाना चाहूँगा!” तुम्हें जानना होगा कि अपनी प्रकृति की सबसे छोटी कमजोरी को भी जीतने में, सबसे छोटी क्षुद्रता और नीचता को सुधारने में आग्रहपूर्ण प्रयास तथा एक अत्यन्त अटल सहिष्णुता की आवश्यकता होती है। भागवत प्रेम के बारे में बात करने का क्या उपयोग है यदि व्यक्ति अहंभाव से मुक्त होकर प्रेम नहीं कर सकता? अमृतत्व के विषय में बात करने से क्या लाभ यदि व्यक्ति अतीत तथा वर्तमान से हठपूर्वक चिपका रहे और यदि व्यक्ति हर चीज प्राप्त करने के बदले में कुछ भी देना न चाहे?

तुम अभी बहुत छोटे हो किन्तु तुम्हें अभी ही सीखना होगा कि लक्ष्य प्राप्त करने के लिए मूल्य कैसे चुकाना चाहिये और यह कि परम सत्यों को समझने के लिए तुम्हें उन्हें दैनिक जीवन के आचरण में लाना होगा।

बस!

CWM Vol.9, p.66-71

— श्रीमाँ

प्रेम केवल तेरे लिए हे प्रभु!

क्योंकि मैं केवल तुझसे प्रेम करती हूँ हे प्रभु! इसलिए सबमें और प्रत्येक में भी केवल तुझसे प्रेम करती हूँ; और उन सबमें केवल तुझसे प्रेम करके मैं अन्त में उन्हें तेरे प्रति कुछ सचेतन बना पाऊँगी।

उनके लिए वास्तविक चीज यह जानना है कि बिना किसी प्राथमिकता तथा बाधा के उनसे कैसे प्रेम किया जाता है। परन्तु वे न केवल अपने ढंग से प्रेम किये जाने के अतिरिक्त प्रेम पाना नहीं चाहते बल्कि वे अपने को प्रेम के प्रति उद्घाटित करना भी नहीं चाहते जब तक यह उनकी पसन्द के माध्यम से न आये... और कुछ घण्टों, कुछ महीनों अथवा कुछ वर्षों में कितना किया जा सकता है जिसे पूरा करने में शताब्दियाँ लग सकती हैं।

*

प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति के साथ एक सचेतन सम्पर्क स्थापित करने के बाद, मैं परम प्रभु में विलीन हो जाती हूँ और तब मेरा शरीर एक माध्यम के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता जिसके द्वारा वे सबके ऊपर प्रत्येक की क्षमता के अनुसार अपना प्रकाश, अपनी चेतना तथा अपना आनन्द प्रवाहित कर देते हैं।

*

मैं तुम सबके अन्दर द्वार खोलने में अधिकतम सावधानी बरतती हूँ, जिससे यदि तुममें एकाग्रता की एक अल्प गति भी हो तब तुम्हें बहुत समय तक उस बन्द दरवाजे के सामने प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी जो अन्यथा हिलेगी नहीं, जिसकी तुम्हारे पास चाभी नहीं है और जिसे खोलने का तुम्हें ज्ञान नहीं है।

द्वार खुला हुआ है, तुम्हें केवल उस दिशा में देखना होगा। तुम्हें उसकी तरफ अपनी पीठ नहीं रखनी है।

*

मैं किसी की गुरु बनना नहीं चाहती। मेरे लिए अधिक सहज और स्वाभाविक है सबकी माँ के समान महसूस करना तथा प्रेम की शक्ति के माध्यम से उन्हें आगे बढ़ाना।

किन्तु तुमने प्रश्न पूछा है, इसलिए मैं उत्तर दूंगी।

जब से तुमने मंत्र का उपयोग आरम्भ किया है, मैंने इसमें इसे प्रभावशाली बनाने के लिए शक्ति भर दी थी। अब क्योंकि तुमने इस मंत्र का शब्द बता दिया है, मैं इसमें शक्ति पुष्ट कर रही हूँ।

*

आप अपने साथ मेरे सम्बन्ध को किस प्रकार देखती हैं?

क्या तुम वैश्व माता के पुत्र नहीं हो?

२५ जुलाई १९७०

*

अब तक मेरी सहज मनोवृत्ति थी परमा माता की जो अपनी स्नेहसिक्त भुजाओं में जगत् का वहन करती है और मैं प्रत्येक के साथ ऐसे बच्चे के समान व्यवहार करती थी जिसकी समान रूप से हर चीज सहन करती है। और लोग यहाँ मुझे प्रसन्न करने के लिए जो सब करते थे, मैं उसे उनके प्रेम के प्रतीक की तरह स्वीकार करती थी तथा मैं इसके लिए बहुत कृतज्ञ थी। आज मैंने सीखा है कि बहुत लोग, यदि सब नहीं, मुझे अपना गुरु मानते हैं और मुझे प्रसन्न करने को उत्सुक हैं, क्योंकि गुरु को प्रसन्न करना मार्ग पर प्रगति करने के लिए सर्वोत्तम तरीका है। और तब मैंने यह समझा है कि गुरु का कर्तव्य है प्रत्येक को केवल वही करने के लिए प्रोत्साहित करना जो प्रभु की ओर उसे शीघ्र ले जाये और भगवान् का प्रयोजन पूरा हो—और मैं इस सीख के लिए अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

*

प्रत्येक को अपने-अपने पथ का अनुसरण करना है जो, आवश्यक रूप से, लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम तथा द्रुततम होता है।

क्योंकि मैं मार्ग जानती हूँ, मुझे उन्हें यह दिखाना मेरा कर्तव्य है।

*

जब मैं कहती हूँ कि मैंने किसी को दीक्षित किया है, तब मेरा तात्पर्य

यह है कि मैंने इस व्यक्ति को अपना रूप उद्घाटित कर दिया है बिना शब्दों के और यह कि वह, मैं क्या हूँ, इसे देखने, महसूस करने और जानने की सामर्थ्य रखता है।

CWM Vol.13, p.82-83

— श्रीमाँ

केवल भगवान् या गुरु पर भरोसा

जब तुम कर्म करते हो तब तुम्हारा एकमात्र उद्देश्य होता है सेवा करना यानी अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए कर्म करने के बदले तुम सेवा की भावना से कर्म करते हो, भगवान् की शक्ति प्राप्त करने की भावना से, बाहर से नहीं (इसमें तुम्हें कभी विश्वास नहीं करना चाहिये) बल्कि अपने अन्दर से, भगवान् की शक्ति के प्रति उद्घाटित होने की भावना से जो अपने कर्म के लिए तुम्हारा उपयोग करेगी तथा उस चीज की परिपूर्ति की भावना से जिसकी परिपूर्ति वह शक्ति तुमसे करवाना चाहती है। यहाँ अहंकार के लिए कोई स्थान नहीं है। एक चीज देने तथा बदले में दूसरी चीज लेने की बात नहीं है। यहाँ बाहर से कुछ प्राप्त करने का कोई प्रश्न नहीं है।

ऐसे अनुशासन होते हैं जो यह नियम बनाते हैं (हमलोग नियम पसन्द नहीं करते, क्योंकि वे हमेशा मनमाना और कृत्रिम होते हैं) कि भगवान् को या गुरु को छोड़कर जो भगवान् का प्रतिनिधि होता है—किसी अन्य से बिलकुल कुछ नहीं लेना चाहिये। कुछ लोग किसी से फल भी नहीं ग्रहण करते, क्योंकि यह गुरु की ओर से नहीं आया है। यह अतिशयोक्ति है—यह परिस्थितियों पर, अवस्थाओं पर निर्भर करता है, तथा यह व्यक्ति की मनोवृत्ति पर निर्भर करता है, यह अनेक चीजों पर निर्भर करता है, इसे समझाने में बहुत समय लगेगा—किन्तु एक चीज बहुत महत्त्वपूर्ण है कि तुम्हें यह सीखना होगा कि भगवान् को छोड़कर किसी व्यक्ति पर अथवा किसी चीज पर चाहे वह कुछ भी हो विश्वास नहीं करना चाहिये। क्योंकि यदि तुम सहारा के लिए किसी के ऊपर भरोसा करोगे तब वह भरोसा टूट जायेगा, यह तुम सुनिश्चित रूप से जान लो। जिस क्षण से तुम योग करना आरम्भ करते हो (मैं हमेशा उन लोगों के विषय में बात करती हूँ जो योग करते हैं, मैं साधारण जीवन के बारे में बात नहीं करती), जो योग करते हैं उनके लिए किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर करना वैसे ही है जैसे उस व्यक्ति को भगवान् की शक्ति के प्रतिनिधि के

रूप में रूपान्तरित करने की इच्छा करना। अब तुम सुनिश्चित हो सकते हो कि लाखों में एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं है जो भार का वहन कर ले, वह तुरन्त टूट जायेगा। अतः किसी से, भगवान् को छोड़कर अन्य से सहारा, सहायता, आराम की आशा करने की मनोवृत्ति कभी न अपनाओ। यह सुनिश्चित है। मैं एक बार भी किसी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिली जिसने सहारे के लिए किसी चीज पर निर्भर रहना चाहा हो (जो योग कर रहा हो अथवा योग के सम्पर्क में लाया गया हो) और धोखा न खाया हो—यह टूट जाता है, रुक जाता है, व्यक्ति सहारा खो बैठता है। तब व्यक्ति कहता है, “जीवन कठिन है”—यह कठिन नहीं है बल्कि व्यक्ति को जानना होगा कि वह क्या कर रहा है। भगवान् के अतिरिक्त कहीं और सहारा की तलाश न करो। भगवान् के अतिरिक्त कहीं और सन्तुष्टि की खोज न करो। अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए भगवान् के अतिरिक्त किसी और व्यक्ति पर निर्भर न करो—कभी नहीं, किसी चीज के लिए भी। तुम्हारी सारी जरूरतों की पूर्ति केवल भगवान् द्वारा हो सकती है। तुम्हारी सारी दुर्बलताएं केवल भगवान् द्वारा सहन की जा सकती तथा सबल बनायी जा सकती हैं। केवल वे ही हर चीज में, हमेशा तुम्हारी आवश्यकता पूरी करने की क्षमता रखते हैं। और यदि तुम किसी अन्य में सन्तुष्टि या सहारा या सहायता या आनन्द या... की खोज करने का प्रयास करो, तब भगवान् जाने, तुम हमेशा एक दिन नाक के बल गिर जाओगे, और वह हमेशा कष्टदायक होता है, कभी-कभी बहुत ज्यादा भी।

CWM Vol.5, p.390-391

— श्रीमाँ

जो अनन्त को चुनते हैं...

श्रीमाँ, यहाँ यह लिखा है, “पहले सत्यों, सिद्धान्तों का ज्ञान...” सबसे पहले शास्त्र का ज्ञान होना चाहिये, किन्तु शास्त्र जानने के लिए यह कहा गया है : पूर्णयोग का परम शास्त्र हृदय गुहा में गुप्त शाश्वत वेद है...” अतः शास्त्र जानने के लिए योग की एक दीर्घ प्रक्रिया आवश्यक है। (हंसी)

हाँ, सामान्य सूत्र के अनुसार यह ऐसा ही है। इसे रात भर में नहीं सीखा जा सकता। मैं समझती हूँ कोई नहीं विश्वास करेगा। केवल श्रीअरविन्द ने इसे

किया है... मैं नहीं जानती, हमलोगों ने अभी तक इसे पढ़ा नहीं है... उन्होंने अन्तर बताया है। वे कहते हैं... नहीं, और आगे वे कहते हैं—हमलोग उसे अगली बार देखेंगे—वे गुरु के बारे में कहते हैं... नहीं... जीवित गुरु के अधिक शक्तिशाली शब्द के बारे में; यह बाद में आता है।

यानी, यदि किताबों के अध्ययन के द्वारा अपने को तैयार करना आवश्यक हो तब यह तैयारी बहुत लम्बा समय लेगी। परन्तु यदि व्यक्ति सीधा ज्ञान ग्रहण कर सके और सभी परिस्थितियों में, तब यह तेजी से हो सकता है। जब तुम्हें मार्गदर्शन देनेवाला कोई न हो और पुस्तकों की सहायता से तुम्हें अपना पथ ढूंढना हो, जब तुम्हें यह कहने वाला भी कोई न हो, “यह नहीं, उस पुस्तक को पढ़ो”, जब हर चीज की स्वयं खोज करनी पड़े, तब समय तो लगता है। अनेकों वर्ष।

इससे काफी अन्तर पड़ जाता है—लोग नहीं समझते—किसी से जिसने सिद्धि प्राप्त कर ली है, जिसके पास सब तरह के अनुभव हैं और उसने लक्ष्य प्राप्त कर लिया है, उसे सत्य का ज्ञान है—उससे प्रश्न करने की सुविधा से बहुत फर्क पड़ जाता है। उससे तुम प्रश्न कर सकते हो, “क्या यह उत्तम है? क्या यह उपयोगी है, क्या यह हानिकारक है?” तब एक मिनट में तुम्हारे पास उत्तर होगा, “हाँ, नहीं, यह करो, उसे पढ़ो, वह न करो।” और यह कितनी सुविधाजनक है!

परन्तु जब तुम बिलकुल अकेले हो—सामान्य तौर पर बहुत अनुकूल परिवेश में नहीं या जहाँ लोग इसके बारे में कुछ नहीं समझते, इसके बारे में नहीं सोचते—यदि वे विरोधी न हों, तब तुम्हें हर चीज की स्वयं खोज करनी होगी। तुम्हें यह कहने के लिए कोई न होगा, “अच्छा तो इस पुस्तक को पढ़ो, यह उससे अच्छी है, उससे अधिक सत्य है इसमें।” तुम्हें ढेर सारी पुस्तकें पढ़नी होंगी, अपने विचार में उनका अन्तर समझना होगा, अपने ऊपर उनके प्रभावों की तुलना करनी होगी कि वे कितनी सहायक हैं या नहीं हैं।

स्वभावतः जिनकी नियति पूर्वनिर्धारित है वे अन्तस्थ मार्गदर्शक द्वारा मार्ग निर्देश प्राप्त करते हैं। प्रायः ऐसा होता है कि वे सहज रूप से ऐसी पुस्तक प्राप्त कर लेते हैं जिसे उन्हें पढ़ना चाहिये अथवा ऐसे व्यक्ति उन्हें मिल जाते हैं जो उपयोगी संकेत दे सकते हैं। परन्तु यह... कुछ समय के बाद वे इस बात के प्रति सचेतन हो जाते हैं कि वहाँ एक चेतना थी। वे बहुत अच्छी तरह नहीं जानते थे कि वह कहाँ से आयी अथवा यह क्या थी अथवा

किसने उनके जीवन को संघटित किया, उनके जीवन की परिस्थितियों को किसने आयोजित किया—और किसने हर कदम पर ठीक हूबहू वही चीज पाने में मदद की जो उन्हें प्रगति की ओर आगे ले गयी। परन्तु यह... यह हमेशा नहीं होता, यह कभी-कभी होता है। ये लोग—इनकी नियति पूर्वनिर्धारित होती है।

अन्यथा यह कठिन कार्य है। इसमें समय लगता है, बहुत समय। इसके बावजूद, यह केवल आरम्भ है। यह उस सत्य का ज्ञान मात्र है जिस पर योग आधारित है। यह योग नहीं है, यह सामान्य सिद्धान्त मात्र है जिस पर व्यक्ति अपने योग का निर्माण करने जा रहा है।

यह स्पष्ट है कि जो इसमें विशेष रुचि रखते हैं वे कुछ न कुछ प्राप्त कर लेंगे। कहने की आवश्यकता नहीं है कि जो भारत में रहते हैं उनके लिए अत्यन्त आसान है। यहाँ एक जीवन्त परम्परा है। जो भी योग करना चाहता है उसे हमेशा कोई न कोई वांछित व्यक्ति अपेक्षित सूचना देने के लिए मिल जायेगा। यहाँ तक कि अत्यन्त अज्ञानी तथा अशिक्षित व्यक्ति को भी कुछ न कुछ यह अस्पष्ट धारणा होती है कि क्या करना चाहिये अथवा किस चीज से मदद मिल सकती है।

परन्तु यदि तुम्हें पश्चिम जगत् में रहना पड़ जाये, तब तुम देखोगे कि यह कितना कठिन है। वहाँ का पूरा का पूरा वातावरण न केवल “इसके लिए नहीं”, न केवल उदासीन बल्कि लगभग बिलकुल विरुद्ध है जो जानबूझकर इस सत्य को जानने से इनकार करता है, क्योंकि यह कष्टदायक है। अतः यह तुम्हारे भीतर होता है, जब इसकी आवश्यकता महसूस होती है, तुम सचमुच नहीं जान पाते कि इसका समाधान पाने के लिए किधर जायें।

अब वहाँ थोड़ा अच्छा है। परन्तु पचास साल पहले इतना अच्छा नहीं था, पचास-साठ साल पहले की बात है। यह कठिन था। अब उन्होंने कुछ प्रगति कर ली है। वहाँ थोड़ा अधिक प्रकाश है, सब जगह।

बस!

मधुर मां, यहाँ कहा गया है कि “जो अनन्त का चुनाव करता है वह अनन्त द्वारा पहले ही चुन लिया गया है।”

यह बहुत ही शानदार वाक्य है!

और यह परम सत्य है। “विचार और झांकियाँ” में भी इस प्रकार का

एक वाक्य है जहाँ मैं समझती हूँ कि वे अनन्त के स्थान पर 'भगवान्' शब्द का प्रयोग करते हैं। परन्तु भाव वही है—कि भगवान् ने ही तुम्हें चुना है। यही कारण है कि तुम उसके पीछे दौड़ रहे हो!

और यही चीज तुम्हें—वे यही कहते हैं—उस तरह का आत्मविश्वास, सुनिश्चितता स्पष्ट रूप से देती है कि व्यक्ति की नियति पूर्व निर्धारित है। और यदि व्यक्ति पूर्व नियत है तब कठिनाइयों का पहाड़ भी क्यों न हो, क्या फर्क पड़ता है, क्योंकि व्यक्ति की सफलता सुनिश्चित है। यह तुम्हें कठिनाइयों का सामना करने के लिए दुर्दमनीय साहस और एक ऐसा धैर्य देता है कि सभी परीक्षाओं का सामना कर सको। तुम्हारी सफलता निश्चित है।

CWM Vol.7, p.336-339

— श्रीमाँ

यह दृश्यमान रूप के माध्यम से रखता है सद्वस्तु पर दृष्टि करता है परिश्रम हमारे मर्त्य मानस व संवेदन में; अज्ञान के आंकड़ों के बीच, शब्द व विचार द्वारा आरेखित प्रतीक-चित्रों में, यह करता है खोज उस सत्य की, करते हैं संकेत सब आंकड़े जिधर; यह करता तलाश प्रकाश के उद्गम की, अन्तर्दृष्टि के दीप से; यह सब कर्मों के कर्ता की खोज में है करता श्रम, अन्तस्थ अनानुभूत अन्तरात्मा की, जो है गुरु, मार्गदर्शक, ऊर्ध्वस्थ अज्ञात आत्मन की, जो गन्तव्य है।

सावित्री, पृ.१६८

दूसरों की नजर में अच्छा बनने की कामना

श्रीमाँ, व्यक्ति कैसे दूसरों की नजर में अच्छा बनने की कामना पर विजय प्राप्त कर सकता है?

हे भगवान्! दूसरों की नजर में अच्छा बनना, सार्वजनिक प्रशंसा पाना? क्या यही चीज?

सबसे पहले अपने-आपसे से यह प्रश्न करना सर्वोत्तम होगा कि क्यों व्यक्ति दूसरों की प्रशंसा को महत्त्व देता है? किस विशेष कारण से, क्योंकि इसके बहुत कारण हैं... यदि तुम्हें महत्त्वाकांक्षी पेशे में जाना हो और तुम्हारी सफलता तुम्हारे बारे में लोगों की राय पर निर्भर हो तब वह उपयोगितावादी या स्वार्थी कारण है। यदि तुममें थोड़ा या बहुत गर्व या दंभ है और अपनी प्रशंसा सुनना पसन्द करते हो, तब यह दूसरा कारण है। यदि तुम अपने बारे में दूसरों की धारणा को बहुत मूल्यवान् समझते हो, क्योंकि तुम समझते हो कि वे बुद्धिमान् हैं या अधिक प्रबुद्ध हैं अथवा उन्हें अधिक ज्ञान है—यह भी एक कारण है। और भी कारण हैं परन्तु ये तीन मुख्य कारण हैं—उपयोगिता, दंभ—सामान्य रूप से यह प्रबलतम कारण है—और प्रगति।

स्वभावतः, जब यह प्रगति का कारण होता है तब मनोवृत्ति बिलकुल वैसी नहीं होती, क्योंकि अच्छा प्रभाव डालने के प्रयास के बदले व्यक्ति को पहले विनम्र होकर उस प्रभाव को जानने का प्रयास करना चाहिये जो वह डाल रहा है जिससे इससे मिलनेवाली शिक्षा से लाभ हो सके। यह दुर्लभ होता है और वास्तव में यदि व्यक्ति अधिक भोलाभाला नहीं है तब व्यक्ति केवल उन्हीं लोगों की राय को महत्त्व देता है जिन्हें अपनी अपेक्षा अधिक अनुभव है, अधिक ज्ञान है, अधिक प्रज्ञा है। और इस प्रकार वह हमें सीधा उपचार की एक सर्वोत्तम विधि की ओर ले जाता है। इसका ठीक-ठीक अर्थ है यह समझ लेना कि उनकी धारणा, जो हमलोगों के समान ही अज्ञानी और अन्धे हैं, गहरे सत्य तथा प्रगति के संकल्प के दृष्टिकोण से हमलोगों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकते। अतः व्यक्ति उसे अधिक महत्त्व देना बन्द कर देता है।

अन्त में, व्यक्ति यदि निष्कपट है तब वह अपने शिक्षक अथवा गुरु अथवा स्वयं भगवान् के अनुमोदन के अतिरिक्त किसी और की प्रशंसा की कामना नहीं करेगा। और यह लोगों के ऊपर अच्छा प्रभाव डालने की कामना की इस छोटी-सी कमजोरी के पूर्ण उपचार की ओर पहला कदम है। अब,

यदि यह कामना उपयोगिता की प्रेरणा से आती है जिसके बारे में पहले कह चुकी हूँ, तब यह प्रश्न यहाँ नहीं उठता, क्योंकि यहाँ हमलोग दूसरों की हम सबके बारे में राय पर निर्भर नहीं करते चाहे जीविका के लिए हो अथवा हमारे विकास के लिए। अतः अब रह जाता है सबसे अधिक निरन्तर पाया जानेवाला उदाहरण, जिसे निर्मूल करना सबसे अधिक कठिन होता है : वह क्षुद्र, अत्यन्त मूर्खतापूर्ण ढंग जो तुम्हें प्रशंसा को पसन्द करने तथा आलोचना को नापसन्द करने को बाध्य करता है। अतः सर्वोत्तम विधि है अपने-आप पर दृष्टिपात करना, यह देखना कि तुम कितने बहुत हास्यास्पद हो, कितने तुच्छ, निकृष्ट, मूर्ख और वह सब, अपने आप पर हँसना और दूसरों की प्रशंसा के बिना रहने का संकल्प करना।

बस केवल यही है मेरे पास समाधान !

यह स्पष्ट है कि यदि यह योग का प्रश्न है, जहाँ तक यौगिक अनुशासन का सम्बन्ध है, तब एक अपरिहार्य प्राथमिक शर्त है अपने को दूसरों से प्रशंसा पाने की मूर्खता से मुक्त रखना। यह योग के पथ पर पहला कदम नहीं है, यह पथ पर प्रवेश करने के लिए तैयारी का मात्र एक पहला कदम है। क्योंकि जब तक व्यक्ति को प्रशंसा और सम्मान पाने की आवश्यकता महसूस होती है तब तक व्यक्ति दासोचित सत्ता और शोचनीय दुर्बलता का शिकार बना रहता है।

वास्तव में उत्तम होगा इस बात की बिलकुल परवाह न करना कि लोग तुम्हारे बारे में क्या सोचते हैं चाहे वे अच्छा सोचें या बुरा। परन्तु जो भी हो, इस चरण तक पहुँचने से पूर्व यह समझने का प्रयास करना कम हास्यास्पद होगा कि जो प्रभाव तुम दूसरों पर डालते हो वे तुम्हारे लिए दर्पण हैं जिसमें तुम अपना प्रतिबिम्ब अपनी चेतना में देखने की अपेक्षा—जो हमेशा सभी दुर्बलताओं, अन्धता, आवेगों, अज्ञान के प्रति अधिक कृपालु होती है—अधिक सही देख सकते हो। तुम हमेशा अपने बारे में एक अच्छा प्रभाव पाने के लिए एक अच्छा खासा मोहक और सुखद मानसिक व्याख्या तैयार करते हो। परन्तु निष्कर्ष यह है कि जब तुम्हें अपने बारे में अधिक विश्वसनीय स्थिति के बारे में जानना हो तब बेहतर होगा दूसरों की राय न पूछकर सब कुछ गुरु को सुपुर्द कर देना और गुरु की दृष्टि में तुम क्या हो, यह जानना। यदि तुम सचमुच प्रगति करना चाहते हो तब यही सुनिश्चित मार्ग है।

CWM Vol.8, p.348-350

— श्रीमाँ

गुरु के पास, गुरु से दूर

अभी तुम्हारा पत्र मिला। मेरा उत्तर इस प्रकार है।

तुम्हारी प्रकृति ऐसी है कि तुम हमेशा वहाँ रहना पसन्द करोगे जहाँ तुम नहीं हो। आश्रम जीवन के प्रति तुम्हारा आकर्षण इस बात से होता है कि तुम इससे बहुत दूर हो। जैसे ही तुम यहाँ लौट आओगे तुम पुनः बेचैनी महसूस करोगे और यहाँ से भाग जाने की प्रेरणा होगी। रामकृष्ण ने कहा है कि गुरु से बहुत दूर रहकर निरन्तर गुरु का चिन्तन करना गुरु के पास रहकर केवल सांसारिक आनन्द की चिन्ता करते रहने से कहीं अच्छा है।

जब तुम इस अवस्था से ऊपर उठ जाओगे और अपने भीतर चैत्य सत्ता को पा लोगे और उसकी भगवान् के लिए निष्कपट और सतत प्रेरणा महसूस करने लगोगे, तब तुम्हारे लिए यहाँ वापस लौट आने और हमेशा के लिए यहाँ रह जाने का समय आयेगा।

CWM Vol.13, p.131

— श्रीमाँ

१० जून १९४९

मिथ्यात्व पर विजय

अभी वर्तमान समय में मिथ्यात्व के स्वामियों ने बेचारी मानव जाति पर लगभग पूरा अधिकार कर लिया है। न केवल निम्न प्राणिक ऊर्जा, निम्न प्राणिक सत्ता बल्कि सम्पूर्ण मानव मन भी उन्हें स्वीकार करता है। उनकी पूजा अनगिनत विधियों से की जाती है, क्योंकि वे अपनी धूर्तता में अत्यन्त सूक्ष्म हैं और अनेक प्रकार के सम्मोहक छद्मवेश में अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। परिणाम यह है कि मनुष्य अपने मिथ्यात्व से चिपके रहते हैं मानों यह उनका खजाना हो और जीवन की सुन्दरतम चीज से भी अधिक हृदय में संजोये रखते हैं। इसकी सुरक्षा के प्रति आशंकित होने के कारण वे इसे अपने अन्दर गहराई में सावधानी से छिपा कर रखते हैं, किन्तु जब तक वे इसे बाहर निकाल कर भगवान् को समर्पित नहीं करेंगे तब तक वे सच्चा सुख नहीं प्राप्त कर सकते।

वास्तव में इसे बाहर लाने तथा प्रकाश दिखाने का कार्य स्वयं अपने आपमें एक महत्त्वपूर्ण रूपान्तरण होगा तथा अन्तिम विजय की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करेगा। क्योंकि प्रत्येक मिथ्यात्व को निरावृत कर देना स्वयं

में एक विजय है—भूल की प्रत्येक स्वीकृति अन्धकार के एक अधिपति का विध्वंस है। यह स्वीकृति अपने स्वयं के प्रति भी हो सकती है बशर्ते यह पूरी ईमानदारी से हो और इसके लिए कहीं सूक्ष्म पछतावा न हो। तथा यह स्वीकृति दूसरे क्षण विस्मृत न हो जाये और इतनी कमजोर न हो कि इसे न दोहराने का संकल्प न किया जा सके। अथवा यह स्वीकृति गुरु में मूर्तिमान भगवान् के प्रति हो सकती है। गुरु के प्रति सीधा व्यक्तिगत स्वीकृति के परिणाम स्वरूप अब तुम्हारा संकल्प तुम्हारा अपना व्यक्तिगत संकल्प नहीं रह जाता, क्योंकि यदि तुम निष्कपट हो तब भगवान् का आदेश तुम्हारे पक्ष में होगा। तुम्हें इसका तात्पर्य क्या है यह बताने के लिए मैं अपना उस समय का अनुभव बताऊंगी जब मैं प्रथम बार श्रीअरविन्द से पांडिचेरी में मिली थी। मैं बहुत गहरी एकाग्रता में थी और अतिमानस में चीजों को देख रही थी जो घटित होने वाली थीं, किन्तु किसी कारणवश अभिव्यक्त नहीं हो पा रही थीं। मैंने श्रीअरविन्द से कहा जो मैंने देखा था और उनसे पूछा कि क्या वे अभिव्यक्त होंगी। उन्होंने बस इतना कहा, “हाँ”। और शीघ्र ही मैंने देखा कि अतिमानसिक ने पृथ्वी को स्पर्श कर लिया और इसकी सिद्धि आरम्भ होने लगी। पहली बार मैंने सत्य को वास्तविक बनाने की शक्ति को साक्षात् देखा। वही शक्ति तुम्हारे अन्दर सत्य की सिद्धि चरितार्थ करेगी जब तुम पूरी निष्कपटता से यह कहोगे, “इस मिथ्यात्व से मैं मुक्त होना चाहता हूँ” और तुम्हें जो उत्तर मिलेगा वह होगा—“हाँ”।

CWM Vol.3, p.141-42

— श्रीमाँ

मंत्र का प्रभाव

... जब तक मंत्र गुरु के द्वारा न दिया जाये और गुरु मंत्र के साथ तुम्हें अपनी गुह्य अथवा आध्यात्मिक शक्ति हस्तान्तरित न करे तब तक तुम मंत्र को हजारों बार दोहराते रह सकते हो परन्तु उसका कुछ प्रभाव न होगा।

CWM Vol.9, p.392

— श्रीमाँ

पूर्ण मुक्ति तथा स्वेच्छाचार

१० फरवरी १९५१

“यदि तुम ईश्वरीय व्यवस्था का अनुगमन करने को तैयार हो तब तुम्हें जो भी कार्य दिया जाये उसे स्वीकार करने में समर्थ होना होगा, विस्मयकारी कार्य भी, और दूसरे दिन उसी अचंचलता के साथ जिसके साथ तुमने स्वीकार किया था उसे छोड़ देने योग्य बनना होगा और यह महसूस नहीं करना होगा कि उत्तरदायित्व तुम्हारा है। किसी वस्तु अथवा किसी जीवन शैली के साथ कोई आसक्ति नहीं होनी चाहिये। तुम्हें पूर्ण रूप से मुक्त होना होगा।”

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१४ अप्रैल)

मैं चाहूँगी कि कोई मुझे यह कहे कि वह “पूर्ण रूप से मुक्त” होने से क्या समझता है, क्योंकि यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। मैं बताऊँगी क्यों।

अधिकांश लोग भ्रांतिवश स्वेच्छाचार को मुक्ति समझते हैं। सामान्य मानसिकता के लिए मुक्त होने का अर्थ है अपनी मर्जी से बिना किसी के हस्तक्षेप के हर तरह की मूर्खता का कार्य करने का अवसर प्राप्त करना। मैं कहती हूँ कि व्यक्ति को पूर्ण रूप से मुक्त होना चाहिये, किन्तु यह बहुत ही खतरनाक सलाह है जब तक वह इन शब्दों का अर्थ न समझे। मुक्त किस चीज से? स्पष्ट रूप से आसक्तियों से मुक्त। यह ठीक-ठीक वही है। बुद्ध की एक कहानी है जिसमें वे एक युवा व्यक्ति को जो सभी कलाओं में निपुण है उत्तर देते हैं, “मैं आत्मसंयम की कला में निपुण हूँ। यदि लोग मुझे बधाई देते या मेरी प्रशंसा करते हैं तब भी मैं प्रशान्त और उदासीन बना रहता हूँ। यदि वे मेरी निन्दा करते हैं तब भी मैं उतना ही शान्त और तटस्थ बना रहता हूँ।”

तब तुम अपने आपसे प्रश्न करने का प्रयास करो यह देखने के लिए कि किस हद तक तुम समस्त निन्दा और प्रशंसा से ऊपर उठ चुके हो। ऐसा नहीं होना चाहिये कि तुम अपने को दूसरों से इतना श्रेष्ठ समझने लगे कि वे कुछ भी कहें वह तुम्हारे लिए महत्त्वहीन है। यह ऐसा नहीं है। यह ऐसा है कि तुम अज्ञान की सामान्य स्थिति से अवगत हो गये हो जिसमें तुम्हारा अज्ञान भी शामिल है और जब अन्य लोग विश्वास करते हैं कि कुछ अच्छा है, तुम जानते हो “यह उतना अच्छा नहीं है जितना वह” और जब वे यह विश्वास

करते हैं कि यह बुरा है तब तुम कह सकते हो “यह उतना बुरा नहीं है जितना वह”। हर चीज पूरी तरह मिश्रित है और अन्ततः कोई किसी को आंक नहीं सकता। इसलिए तुम सब तरह की प्रशंसा और निन्दा से पूर्ण विरक्त हो जाते हो। और निष्कर्ष होगा : जब तक मेरे अन्दर की दिव्य चेतना अथवा उसकी चेतना जिसे मैंने अपना गुरु चुना है मुझे यह नहीं कहता, “इसे करना है”, “इसे नहीं करना है” तब तक दूसरों की बातों के प्रति मैं विरक्त हूँ, क्योंकि मैं समझता हूँ कि जिसमें मैंने विश्वास किया है उसमें दिव्य उपस्थिति अच्छा, बुरा समझने में समर्थ है और जानती है कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये।

और वह मुक्त होने का सर्वोत्तम विधि है। भगवान् के प्रति तुम्हारा समर्पण सम्पूर्ण होने दो और तुम पूर्णतया मुक्त हो जाओगे।

सचमुच मुक्त होने का एकमात्र मार्ग है भगवान् के प्रति अपना समर्पण सम्पूर्ण बनाना, बिना शर्त, क्योंकि तब समस्त जो तुम्हें बन्धन में रखता है, जंजीर से बांधता है, तुझसे सहज ही झड़ जायेगा और उसका अब कोई महत्व नहीं रह जायेगा। यदि कोई तुम्हारी निन्दा करता है, तब तुम कह सकते हो, “किस अधिकार से वह मेरी निन्दा करता है। क्या उसे सर्वोच्च संकल्प का ज्ञान है? और वही चीज जब तुम्हें कोई बधाई दे। यह मैं तुम्हें नहीं कह रही हूँ कि दूसरों से जो कुछ तुम्हें मिलता है उसका लाभ न लो। मैंने आजीवन यह सीखा है कि एक छोटा बालक भी तुम्हें ज्ञान दे सकता है। ऐसा नहीं कि वह तुमसे कम अज्ञानी है परन्तु वह दर्पण के समान है जो तुम्हारी छवि को प्रतिबिम्बित करता है कि तुम क्या हो। वह कुछ ऐसी चीज कह सकता है जो तुम नहीं जानते। यदि तुम किसी अवांछित प्रतिक्रिया के बिना तुम उसे ग्रहण करो तब इससे तुम्हें काफी लाभ मिल सकता है।

CWM Vol.4, p.90-92

— श्रीमाँ

एक गुरु के प्रति एकनिष्ठता

एक डॉक्टर से दूसरे डॉक्टर के पास जाना वैसी ही भूल है जैसे एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाना। एक भौतिक स्तर पर भूल है जब कि दूसरी आध्यात्मिक स्तर पर। तुम्हें डॉक्टर का चुनाव करना होगा और उसके साथ बने रहना होगा यदि तुम शारीरिक भ्रान्ति में प्रवेश नहीं करना चाहते। यदि

डॉक्टर स्वयं किसी और या औरों से परामर्श लेना चाहता हो ताकि चीज सुरक्षित रूप से की जा सके तभी केवल ऐसा किया जा सकता है।

CWM Vol.15, p.157

— श्रीमाँ

१४ मार्च १९६१

मानसिक प्रतिपादन से अनुभूति बिखर जाती है

क्यों तथा किस यान्त्रिकता से अनुभूति का मानसिक प्रतिपादन या सूत्रीकरण अनुभूति को छितरा देता है तथा चेतना पर इसकी क्रिया के लिए इसके अधिकांश भाग को नष्ट कर देता है?

उदाहरण के लिए यदि तुम एक गलत गति से छुटकारा पाना चाहते हो और इसके लिए कृपा के परिणाम-स्वरूप इस प्रयोजन के लिए शक्ति को प्रेषित किया जाता है तब यह शक्ति चेतना पर क्रिया करना आरम्भ कर देती है। तब, यदि तुम इसे सूत्रीकरण के उद्देश्य से अपनी ओर खींचते हो, स्वभावतः तुम इसे विकेंद्रित कर देते हो, छिन्न-भिन्न तथा छितरा देते हो।

किन्तु इतना ही नहीं है : दूसरे को इसे बताने का सामान्य तथ्य अपने-आप ही उससे आनेवाली हर चीज के प्रति तुम्हें उद्घाटित कर देता है—एक विनिमय, परस्पर आदान-प्रदान हमेशा होता है। इस प्रकार उसकी उत्सुकता, उसका धुंधलापन, उसकी शुभकामना तथा कभी-कभी उसकी दुर्भावना भी हस्तक्षेप करती है, सुधार करती है, विरूपित करती है।

दूसरी ओर, यदि तुम अपनी अनुभूति अपने गुरु को बताना चाहते हो और वह सुनने के लिए सहमत है, तब इसका अर्थ है कि वह अपनी शक्ति, अपना ज्ञान तथा अपनी अनुभूति शक्ति की कार्यप्रणाली में युक्त कर देता है तथा परिणाम लाने में मदद करता है।

CWM Vol.15, p.352

— श्रीमाँ

मन से अधिक प्रबुद्ध

भगवान्, विश्वगुरु मन से कहीं अधिक प्रज्ञावान् हैं। उस पर भरोसा रखो, शाश्वत स्वार्थी तथा घमण्डी सन्देहवादी पर नहीं।

CWM Vol.10, p.341

— श्रीअरविन्द

अपनी नीरव उचाइयों पर थी वह अवगत
एक स्थिर उपस्थिति से अपनी भृकुटी के ऊपर सिंहासनारूढ़
जिसने देखा लक्ष्य और चुना प्रत्येक भाग्यनिर्दिष्ट मोड़;
इसने किया प्रयुक्त देह को एक आधार सम अपना,
नेत्र, जिन्होंने किया भ्रमण, थे अन्वेषक-ज्योति की ज्वालाएं
वे हाथ जो पकड़े थे लगाम, थे जीवन्त उपकरण
थी यह समस्त कार्यप्रणाली एक पुरातन योजना की
एक मार्ग, था प्रशस्त किया एक निर्भूल मार्गदर्शक ने

सावित्री, पृ.३७८